❀ श्री गौरहरिर्जयति ❀

प्रकाशक के द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ संख्या--१२७

सानुवादम्

— श्रीजगन्नाथवल्लभनाटकम् —

— महामहिम —

श्रीश्रीरामानन्दरायविरचितम्

प्रकाशक व मुद्रक
कृष्णदास बाबा
कुसुमसरोवर

राधाष्टमी
सम्वत् २०२१

श्रीगौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा)

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

* धन्यवादपत्रम् *

प्राचीन अप्रकाशित व प्रकाशित ग्रन्थों के उद्धार के लिये महाप्रभु-कृपा ही परम सम्बल है। उस कृपा ने हृदय में आवेश देकर इस अधम-अयोग्य के द्वारा जो कुछ कराया सो ठीक है, साथ में कुछ धर्मप्राण साहित्यसेवी महानुभावों की सहायता भी। इस समय उन दोनों महानुभावों से मैं आभारी हूँ एक तो कल्याणपत्रिका के सम्पादक श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार दूसरे भक्तिपरायण, उदार हृदय, देहली वाले सेठ जयदयालजी डालमियाँ। इन दोनों की सहायता से ही मैं प्राचीन-उन ग्रन्थों का प्रकाशन में समर्थ हो रहा हूँ। अतः दोनों को हार्दिक धन्यबाद देता हूँ। इस धन्यबाद पत्र के द्वारा भाई जी (पोद्दारजी) को बाध्य करता हूँ कि उन्होंने जिन गौडीय ग्रन्थों को प्रकाशित कराने के लिये हिन्दी-अनुबाद कराया है उन का प्रकाशन-कार्य्य शीघ्र आरम्भ कर दें।

कृष्णदास बाबा

॥ इति ॥



[—:❀ दो शब्द ❀:—]

भज-निताई गौर राधे याश्म।
जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

श्रीजगन्नाथबल्लभनाटक नाम से प्रसिद्ध यह नाटकगीति गजपति महाराज प्रतापरुद्र के आदेश से महाप्रभु के अन्तरङ्ग परिकर श्रीरामानन्दराय के द्वारा आनुमनिक १४२६ से १४३२ शाक के बीच में रचित हुई है। पुरी में प्रचलित मादला पञ्जीका (पञ्चांग) के अनुसार १४२६ शकाब्द से १४४५ शकाब्द पर्य्यन्त प्रतापरुद्र का राजत्वकाल है। १४३२ शक में महाप्रभु का दाक्षिणात्य गमन है उसी समय रामानन्दराय के साथ उनका संसर्ग है। इस से महाप्रभु की कृपा-प्राप्ति के पहले ही इस नाटक की रचना है ऐसा अनुमान किया जाता है। इस का प्रारम्भ में महाप्रभु की वन्दना नहीं है। गम्भीरानाथ महाप्रभु चैतन्यदेव ने शेष द्वादश वत्सर नीलाचल में रह कर राधा-भाव का जो सरस आस्वादन किया है, उस का सहायकरूप रामानन्दराय -स्वरूप-दामोदर आदि दो चारि अन्तरङ्ग पार्षद एवं चण्डीदास-विद्यापती जी की पदाबली, कृष्णकर्णामृत, जयदेवजी का गीत-गोबिन्द तथा रामानन्दराय के जगन्नाथबल्लभ नामक यह नाटक। चैतन्यचरितामृत मध्यलीला के द्वितीय परिच्छेद में कहा है—

"गुरु नाना भावगण, शिष्य प्रभुर तनु मन नाना रीते सतत नाचाय। निर्वेद-बिषाद दैन्य-चापल्य हर्ष धैर्य्य-मन्य, एई नृत्ये प्रभुर काल जाय॥ चण्डीदास-बिद्यापति रायेर नाटक गीति, कर्णामृत श्रीगीतगोबिन्द। स्वरूप-रामानन्द सने महाप्रभु रात्रि दिने गाय शुने परम आनन्द" ॥

"रामानन्दराय श्रीचैतन्यशाखा में माने जाते हैं। "रामानन्द सह मोर देहमात्र भेद" एसा चैतन्यचरितामृत में कहा गया है। पूर्व लीला में आप बिशाखा – सखी हैं। पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन तथा श्रीकृष्ण के प्रियनर्म्म सखा अर्ज्जुन का इन में प्रवेश है। पद्मपुराण में एसा कथन है कि अर्ज्जुन ने गोपी- देह लाभ कर अर्ज्जुनीया नाम धारण किया। उस अर्ज्जुनीया गोपी का भी इन में प्रवेश है। पिता का नाम भवानन्दराय था एसा स्वयं इस नाटक में कहे हैं।

उडिष्या के स्वाधीन नरपति प्रतापरुद्र के आप मन्त्री थे, "दिनमणिचन्द्रोदय" नामक ग्रन्थ में इन के वंश परिचय इस प्रकार दिया है—

भवानन्दराय के दो पुत्र हुए, वाणीनाथ एवं रामानन्द। वाणीनाथ के गोकुलानन्द एवं हरिहरराय नाम के दो पुत्र थे। उन के गोविन्दानन्द महा विद्वान हुए गोविन्दानन्द के नित्यानन्द एवं मनोहर दो पुत्र थे।

रामानन्दराय का जन्म १३००शकाब्द शेषभाग में कटक के आस पास कहीं अनुमान किया जाता है। तिरोभाव-काल १४५५ ब १४५६ शक(गौण)वैशाख कृष्णा पंचमी है। चैतन्यदेव दक्षिणयात्रा काल में गोदाबरी तट स्थित बिद्यानगरी में गये उसका प्रधान कारण था रामानन्दराय से मिलने का। दोनों में कृष्ण–बार्त्ता हुई। बक्ता रामानन्दराय श्रोता गौरसुन्दर। प्रभु गौर ने रामानन्दराय के हृदय में प्रेरणा देकर उनके द्वारा श्रीकृष्ण के भक्ति-रस-वैभवादि सिद्धान्त का प्राकट्य कराया है। चैतन्यचरितामृत के मध्यखंड ८ परिच्छेद में इस का विस्तार बर्णन है। महाप्रभु ने स्वयं कहा कि—पृथिबी के बीच में एसे

रसवेत्ता दूसरा नहीं है। "फलेन फलकारणमनुमीयते" यह न्याय है। इसका निदर्शन-स्वयं गौरचन्द्र ने गम्भीरा में इन के नाटक का आस्वादन किया। जैसा कि भागवत के रासपंचाध्यायी आदि प्राणरूप(प्रधान अंग)हैं उसी प्रकार चैतन्यचरितामृत में "रामानन्दमिलन" प्राण रूप है। रामानन्दराय राजा प्रतापरुद्र के आदेशानुसार शासन सुबिधा के लिये बिद्यानगर में रहते थे। पश्चात् पुरीधाम में चैतन्यदेव के साथ रहने लगे।

इस नाटक में पांच अंक हैं, प्रथमाङ्क में पूर्वराग, द्वितीय में भावपरीक्षा, तृतीय में भावप्रकाश, चतुर्थ में राधाभिसार एवं पञ्चम में राधासंगम बर्णित है।

प्रथमाङ्क में :—

प्रथमश्लोक में मङ्गलाचरण नान्दीपाठ रूप में मुरारी श्रीकृष्ण की नृत्यमाधुरी का और द्वितीय-तृतीय श्लोक में मुख—माधुर्य्य का वर्णन है। तत्पश्चात् "मृदुलमलयजपवनतरलित-चिकुरपरिगतकलापम्" इत्यादि गीतिद्वारा श्रीकृष्ण को मूर्त्तिमान श्रृङ्गार रसराज स्वरूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार चारों श्लोकपदों में नान्दीपाठ है। अनन्तर सूत्रधार रङ्गमञ्च में आ जाता है एवं नटी के साथ नाटक के बिषय में वार्त्तालाप होता है। सूत्रधार नटी से यह निर्देश करता है कि—

महाराज गजपति प्रतापरुद्र का आदेश है कि तुम एक सरस श्रीकृष्ण-गुण-लीलाओं से परिपूर्ण नाटक का अभिनय कर प्रसन्न कराओ। अतः सूत्रधार श्रीरामानन्दरायविरचित "जगन्नाथबल्लभ" नामक पञ्चाङ्ग युक्त नाटक का अभिनय करने को नटी से आदेश करता है। अनन्तर सूत्रधार बगैरा रङ्गमञ्च से चले जाते हैं अथ प्रस्तावना अर्थात् बक्तव्य विषय का प्रारम्भ

होता है। रंगमञ्च में विदूषक के साथ श्रीकृष्ण का प्रवेश होता है। श्रीकृष्ण विदूषक (मधुमङ्गल) से वृन्दाबन माधुर्य्य का बर्णन करते हैं। "कलय सखे भुवि सारं। त्वदुपगमादिव सरसमिदं मम वृन्दाबनमनुबारम" इत्यादि पद्य से। अनन्तर श्रीकृष्ण वेणुबादन करते हैं मधुमङ्गल हास्यपूर्ण उच्च चीत्कार करता है। अनन्तर नेपथ्य में राधिका की "केलिविपिनं प्रविशति राधा। प्रतिपदसमुदितमनसिजबाधा" इत्यादि पद्य से निकुञ्जागमन सूचना दी जाती है। इसके बाद सखियों के साथ राधिका, मदनिका तथा बनदेबता रङ्गमञ्च में प्रवेश करती हैं। मदनिका पूर्वरागोचित "सोऽयं युवा युबतिचित्ताबिहङ्गशाखी" इत्यादि पद्य से श्रीकृष्ण रूप माधुर्य्य का वर्णन करती हैं। दूर से श्रीकृष्ण का राधादर्शन होता है अनन्तर मधुमङ्गल के साथ श्रीकृष्ण तथा सखियां व मदनिका के साथ राधिका रङ्गमञ्च से सब चले जाते हैं। अब प्रथमाङ्क समाप्त होता है।

द्वितीयाङ्क में :—

पहले मदनिका तथा अशोकमञ्जरी दोनों से राधिका के कृष्णानुराग का वर्णन किया जाता है। मदनिका "हरि हरि चन्दनमारुतपिकरुतमनुतनुरतनुविकारम" इत्यादि वाक्यों से राधा की भाबदशा का श्रबण कराती है। अशोकमञ्जरी राधा का बिरहताप शान्ति के लिये शय्या रचनार्थ कमलदल समूह लाने को चली जाती है मदनिका श्रीकृष्ण के निकट भी। अब बिष्कम्भक अर्थात् भूत-भबिष्यत बस्तू की अंश-सूचना की जाती है। अनन्तर शशिमुखि के साथ श्रीकृष्ण का प्रवेश होता है, शशिमुखी अनङ्ग पत्रिका अर्पण करती है। श्रीकृष्ण उस का पाठ कर भीतर से भावाबिष्ट हो जाते हैं परन्तु बाहिर भाव छिपा कर उपेक्षामय वचनों से उपेक्षित (अनादर) कर देते हैं।

"शशिमुखि वारय वारिजबदनाम्। अनुचितबिषयविकस्वरमदनाम्" इत्यादि पद्य से । अनन्तर सब रङ्गमञ्च से चले जाते हैं।

तृतीयाङ्क में :—

शशिमुखी, मदनिका के द्वारा प्रबोधिता राधा उपस्थित होती है। राधिका के द्वारा अपने हृदय स्थित कृष्णानुराग व्यक्त किये जाने पर शशिमुखी भाव परीक्षा करती हुई श्रीकृष्ण की उपेक्षा बतला कर उन से अन्यत्र मन लगाने का उपदेश करती है। उससे राधिका विरहदशा को प्राप्त हो जाती हैं। तत्पश्चात मदनिका "तुम्हारे प्रति श्रीकृष्ण का अनुराग है', यह सान्त्वना देती है। अनन्तर मदनिका के द्वारा नियोजिता माधवी चित्रफलक लेकर उपस्थित होती है तथा राधा को दिखाती है। उस फलक में कुछ अक्षर एसे लिखे हुए थे कि जिस से श्रीराधा के प्रति कृष्ण का अनुराग स्पष्ट रूप में व्यक्त हो रहा था। तब श्रीराधिका उत्कण्ठित होकर "मञ्जुतरगुञ्जदलिकुञ्जमतिभीषणम्। मन्तमरुदन्तरगगन्धवृतदूषणम्" इत्यादि पद्य से प्रिय श्रीकृष्ण के बिना समस्त अभाव व बिपरीत रूप बतलाने लगतीं। अब मदनिका "बकुलवृक्ष के नीचे हम लेंगी" एसा कह कर चली जाती है। राधा भी शशिमुखी के साथ चली जाती हैं।

चतुर्थाङ्क में :—

राधा प्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण की प्रबल उत्कण्ठा होती है। वे मदनिका मुख से राधा की उत्कट बिरहदशा का श्रवण कर श्रीराधा को संकेत कुञ्ज में अभिसार कराने के लिये आदेश करते हैं। इस बीच मधुमङ्गल शुष्क कमल पत्र लाकर राधिका को दिखाता हुआ "नलिनवनं बनमालिकृते कृतमुज्झितकुसुमपलाशं पल्लवमपि बृन्दाबनमनु" इत्यादि पद्य से श्रीकृष्ण की विरहदशा

का भी वर्णन करता है । अनन्तर मदनिका श्रीकृष्ण दोनों में राधिका सम्बन्धी भावालाप होता है । मदनिका चली जाती है । श्रीराधिका संकेतोचित वेष धारण कर माधवी के साथ अभिसारिता होती हैं। उस समय मदनिका आकर श्रीराधा का भावोच्छ्वास बढ़ाती है । श्रीकृष्ण भी राधा की अपेक्षा से उत्कण्ठित हो जाते हैं। तदुपरान्त श्रीराधिका कृष्ण के पास आय मिलती हैं। मदनिका दोनों का संगम करा कर स्थानान्तर चली जाती है। अनन्तर सब प्रस्थान करते हैं।

पञ्चमाङ्क में :—

श्रीराधा-माधव की संभोगक्रीड़ा का बर्णन है । तदुपरान्त अरिष्टासुर आय जाता है । श्रीकृष्ण उसका बध करते हैं। मदनिका प्रभृति सब उपस्थित होकर श्रीकृष्ण की जयश्री अवलोकन कर कृतकृत्य हो जाती हैं। मदनिका पारितोषिक देने के लिये श्रीकृष्ण से निवेदन करती है श्रीकृष्ण "जब तुमने आनन्द की एक मात्र निदान मृगनयना राधिका का संगम करा कर विरहतप्त मुझे पीयूषधारा पान कराया है तो इससे बढ़ कर अधिक क्या पारितोषिक हो सकता है" एसा कह कर मदनिका से प्राथंना करते हैं कि जो श्रद्धान्वित हो कर गोपाललीलाबलम्वि मेरा यह अतुल चरित रहस्य अन्तः करण में सेवा करता है आप उस व्यक्ति के प्रति एसा कृपा करें कि जिससे उस की इस वृन्दाबन में अभीष्ट सिद्धि हों" । मदनिका तथास्तु कह कर उस का स्वीकार करती है। अब सब रङ्गमञ्च से चले जाते हैं । अब नाटक समाप्त होता है ।

इस नाटक में शशिमुखी तथा मदनिका का चरित्र विशेष उल्लेख योग्य है। पौर्णमासी देवी जो राधाकृष्ण दोनों की लीला में सहायकारिणी है वह इस में मदनिका नाम से अभि–

हिता है। शशिमुखी राधा की सखी है, मदनमञ्जरी आदि नाटकीय रसपोषण की सहायकारिणी है। मधुमङ्गल श्रीकृष्ण के बिदूषक है जो कि हास्यरस को बढ़ाने बाला है। यह "जगन्नाथबल्लभ नाटक आकार में क्षुद्र होने पर भी भावव्यक्त में अतिसुन्दर है, इसकी भाषा भी अतिसरस गाम्भीर्य्यमयी है। इस में २१ पदावली (गीत) है। सर्वत्र शृङ्गार रस उद्दङ्कित किया गया है, उपसंहार में अरिष्टासुर बध रूप वीररस का सम्मिलन है। बिदूषक की उक्ति में हास्यरस मौजूद है। वे रस अङ्गी शृङ्गार रस का अनुगत हैं। इस के अन्यान्य अनुवाद मौजूद हैं परन्तु श्रीलोचनदासजी का पद्यानुवाद सर्वोपरि है। उन्होंने केवल पदाबली का पद्यबन्ध अनुबाद किया है। इस से मूल का यथार्थ मर्म्म स्फुट हो गया है। श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु चरणाब्जचञ्चरीक श्रीराधारमणचरणदास (बड़े बाबाजी) महाराज के कृपापात्र श्रीनित्यस्वरूपब्रह्मचारी महोदय ने सम्बत् १९५८ में बृन्दाबनस्थ देवकीनन्दन प्रेस से देवनागरी अक्षर में माध्वगौडेश्वराचार्य्य गोस्बामी बालकृष्ण जी महाराज के हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन किया था, अब बह अप्राप्य है, कहीं भी है तो जीर्ण-शीर्ण पत्र रूप में है। मूर्शिदाबाद जिला (बहरमपुर) हरिभक्तिप्रदायिनी सभास्थ राधारमणप्रेस से श्रीरामनारायणबिद्यारत्नमहोदय ने वंगभाषानुवाद एवं लोचनदासजी कृत प्राचीन पद्यानुबाद के साथ इस का प्रकाशन किया है। हमारे परम गुरुदेव उन बड़े बाबाजी की प्रेरणा से यह अधम इस समय इस का देवाक्षर प्रकाशन में प्रवृत्त हुआ है।

कृष्णदास

॥ इति अलम् ॥

❀ प्रकाशक की गुरु-प्रणाली ❀

(राधाकृष्णमिलितविग्रह)

श्रीकृष्णचैतन्यदेव महाप्रभु
श्री नित्यानन्द प्रभु
श्री बीरचन्द्र प्रभु
श्री रामचन्द्र प्रभु
श्री किशोरीमोहन गोस्वामी
श्री राधाबल्लभ ,,
श्री राधारमन ,,
श्री राधामाधब ,,
श्री सत्यानन्द ,,
श्री राधिकाप्रसाद ,,
श्री कृष्णचैतन्य ,,
श्री नित्यराधा ,,
श्री शङ्करारण्य ,,
श्री राधारमन चरनदास बाबाजी
श्री रामदास बाबाजी



❀ श्री श्री राधारमणो जयति ❀

❀श्रीजगन्नाथवल्लभनाटकम्❀

❀ प्रथमाङ्कः ❀

स्वराञ्चित–विपञ्चिका–मुरज-वेणु-संगीतकं
त्रिभङ्ग–तनुवल्लरी–वलित–वल्गु–हासोल्वणम् ।
वयस्य–करतालिका–रणित–नूपुरैरुज्ज्वलं
मुरारिनटनं सदा दिशतु शर्म्म लोकत्रये ॥ १ ॥

अपि च ।

स्मितं नु न सितद्युतिस्तरलमक्षि नाम्भोरुहं
श्रुतिर्नच जगज्जये मनसिजस्य मौर्वीलता ।
मुकुन्द-मुख-मण्डलेरभस-मुग्ध-गोपाङ्गना-
दृगञ्चलभवो भ्रमः शुभशताय ते कल्पताम् ॥ २ ॥

विपञ्चिका वीणा । वल्लरी लता ॥ १ ॥
स्मितेति अपन्हुत्यलङ्कारोऽयम । रभसो हर्षवेगयोरिति कोषः ॥ २ ॥

अपिच –

कामं कामपयोनिधिं मृगदृशामुद्भावयन्निर्भरं
चेतः कैरवकाननानि यमिनामत्यन्तमुल्लासयन् ।
रक्तः कोककुलानि शोकविकलान्येकान्तमाकल्पय-
न्नानन्दं वितनोतु वो मधुरिपोर्वक्त्रापदेशः शशी ॥३॥

नटरागेण ॥

मृदुलमलयजपवन-तरलित-चिकुर-परिगत-कलापकम् ।
साचि–तरलित–नयन-मन्मथशङ्कु-सङ्कुलचित्त-सुन्दरी-
जन-जनित-कौतुकम् ॥
मनसिजकेलिनन्दितमानसम् ।
भजत मधुरिपुमिन्दु-सुन्दर-वल्लवीमुखलालसम् ॥ध्रु०॥
लघु तरलितकन्धरं हसित-नव-सुन्दरं
गजपति-प्रताप-रुद्रहृदयानुगतमनुदिनम् ।
सरसं रचयति रामानन्दराय इति चारु ॥ ४ ॥

नान्द्यन्ते सूत्रधारः–अलमतिविस्तरेण । प्रिये इत इतः ॥५॥

उद्भावयन् वर्द्धयन् । यमिनां योगिनाम् । कोकश्चक्रवाकः आ-कल्पयन् कुर्व्वन् ॥ ३ ॥

साचि तरलितनयनश्चासौ मन्मथशङ्कुशङ्कुलचित्ताश्चेति साचि-तरलित-नयन-मन्मथशङ्कुशङ्कुलचित्ताः एवम्भूतेन सुन्दरी-जनेन जनितं कौतुकं यस्य तम् ॥ ४ ॥

गुरुदेवद्विजातीनां स्तुतिर्यत्र प्रवर्त्तते । आशीर्वचनसंयुक्ता सा नान्दी परिकीर्त्तिता ॥ ५ ॥

(प्रविश्य नटी)

नटी-अज्ज एस ह्मि णिअ किंकरी अणं चरण - पडिदं विलोअणपसादेहिं पसण्ण - हिअअं कादु भट्टा परं पमाणम् ॥ ६ ॥

सूत्र- (सहर्षम्) चिरसमयं विदग्धोचितवेशेन यौवनविलासमनुभवतु भवती ।

नटी — अज्जेण कुदो आहूदह्मि ॥७॥

सूत्र—प्रिये न विदितं भवत्याः प्रसादकथनमेतत् ।

नटी—सम्पदि ता सोदु मम हिअअं कूदुहलेहिं बिप्फारिदं बट्टदि ॥ ८ ॥

सूत्र—प्रिये शृणु --

अद्य खलु बसन्तबासरावसरे तरुणभास्वद्विमुक्तदक्षिण - दिग्विलासिनी - स्तनमलयाचलावलम्बि - वेणी - भुजङ्ग - सङ्गिसमीरणमूर्छितविरहिणीजनजीवातु वयस्याश्वासबचः प्रसरे विकसित-शीतकिरण-प्रसूने च विमलनभोवन- प्रोज्जृम्भमाणनवनवोन्मीलित-निस्तल - मुक्ताफल - तुलित-

आर्य्य एषास्मि निजकिङ्करीजनं चरणपतितं बिलोकनप्रसादैः प्रसन्नहृदयं कर्त्तां भर्त्ता परं प्रमाणम् ॥ ६ ॥

आर्येण कस्मादाहुतास्मि ॥ ७ ॥

सम्प्रति तत् श्रोतु मम हृदयं कुतुहलै बिस्फारितं वर्त्तते ॥८॥

तारामुकुल-मध्यावलम्बिनि सासूय - निर्भर - निरीक्षमाण-विरहिणी – जन – चञ्चललोचनाञ्चललताग्रवर्त्तिनि निरुपमकान्तिलक्ष्मीलुब्ध-लक्ष्मी-रमणावस्थानोचितचित्तदुग्धाब्धिना विभावादि – परिणतरसरसालमुकुलरसास्वाद - कोविदपुंस्कोकिलेन श्रीकण्ठहारमहचरगुणमुक्ताफल – मण्डित-हृदयेन किं बहुना ॥ ९ ॥

यन्नामापि निशम्य सन्निविशते सेकन्धरः कन्दरं
स्वं वर्गं कलबर्गभूमितिलकः सास्रं समुद्वीक्षते ।
मेने गुर्ज्जरभूपतिर्जरदिवारण्यं निजं पत्तनं
वातव्यग्रपयोधिपोतगमिव स्वं वेद गौडेश्वरः ॥१०॥

कायव्यूहविलास ईश्वरगिरेर्द्वैतं सुधादीधिते
र्निर्यासस्तुहिनाचलस्य यमकं क्षीराम्बुराशेरसौ-
सारः शारदवारिदस्य किमपि स्वर्वाहिणीवारिणो
द्वैराज्यं विमलीकरोति सततं यत् कीर्तिराशिर्जगत् ॥११॥

यद्दानाम्बुकदम्बनिर्म्मितनदीसंश्लेषहर्षादसौ
रिङ्गत्तुङ्गतरङ्गनिःस्वनमिषात् प्रस्तौति यं वारिधिः ।
नित्यप्रस्तुतसप्ततन्तुभिरभिस्यूतं मनो नाकिनां
येनैतत् प्रतिमाच्छलेन यदमी मुञ्चन्ति न प्राङ्गणम् ॥१२॥

तेन प्रतिभटनृपघटाकालाग्निरुद्रेण श्रीमत् प्रतापरुद्रेण श्रीहरिचरणमधिकृत्य कमपि प्रबन्धमभिनेतुमादिष्टोऽस्मि ॥१३॥

यदुक्तम्—

मधुरिपुपदलीलाशालि तत्तद्गुणाढ्यं
सहृदयहृदयानां काममामोदहेतुम्।
अभिनवकृतिमन्यच्छायया नो निबद्धं
समभिनय नटानां वर्य्य किंचित् प्रबन्धम् ॥१४॥

नटी --- तत् कथय।

नट—कथमाराधनीयो विद्यानां निधिः। यतोऽस्मिन्नभिधातुकामो वाक्पतिरपि प्रतिपत्तिमूढः स्यात् (क्षणं-विमृष्य) आं स्मृतम् ॥१५॥

नटी—ता किं सो ॥१६॥

सूत्र – प्रिये! सर्वविद्यानदीबिलास – गाम्भीर्य्यमर्य्यादा – स्थैर्य्यप्रसादादिगुणरत्नाकरस्य सुरगुरुप्रणीतनीतिकद – म्बकरम्बितमन्त्राश्रवीकृतप्र णपृथ्वीश्वरस्य श्रीभवानन्द-रायस्य तनूजेन श्रीहरिचरणालङ्कृतमानसेन श्रीरामा – नन्दरायेण कविना तत्तत्गुणालङ्कृतं श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाम गजपतिप्रतापरुद्रप्रियं रामानन्दसङ्गीतनाटकं निर्म्माय समर्पितमभिनेष्यामि ॥१७॥

तथा चायं कविः सविनयमिदमवादीत्।

न भवतु गुणगन्धोऽप्यत्र नाम प्रबन्धे
मधुरिपुपदपद्मोत्कीर्त्तन नस्तथापि।
सहृदयहृदयस्यानन्द-सन्दोह-हेतु-
र्नियतमिदमतोऽयं निष्फलो न प्रयासः ॥१८॥

तदादिश्यन्तां कुशीलवा वर्णिकापरिग्रहाय ।

नटी - (संस्कृतमाश्रित्य) यदाज्ञापयति स्वामी (पुरोऽवलोक्य) पश्य पश्य ॥१९॥

मृदुलमलयवाताचान्तवीचिप्रचारे
सरसि नवपरागैः पिंजरोऽयं कलमेन ।
प्रति-कमल-मधूनां पानमत्तो द्विरेफः
स्वपिति कमलकोषे निश्चलाङ्गः प्रदोषे ॥

सूत्र — (महर्षम्) प्रिये साधु साधु मन्मनः कुतूहल - जलनिधिविवर्त्ते निहितं भवत्या यतो गोपाङ्गनाशता - धरमधुपाननिर्भरकेलिक्लमालसापघनः क्वचित् प्रौढ - बधूस्तनोपधानीयमण्डितहृदयपर्य्यङ्कशायी पीताम्बरो नारायणः स्मारितः ॥२०॥

(नेपथ्ये)

द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तो देवदेवेश्वरो हरिः ।
गोपालबालकैः सार्द्धं जगाम यमुनावनम् ॥२१॥

(केदाररागेण)

मृदुतर-मारुत-वेल्लितपल्लववल्लीवलितशिखण्डम् ।
तिलकबिडम्बितमरकतमणितलविम्बितशशधरखण्डम् ॥
युवतिमनोहरवेशम् ।
कलय कलानिधिमिव धरणीमनु परिणतरूपविशेषम् ॥
॥ ध्रु० ॥

खेलादोलायितमणिकुण्डल-रुचिरुचिराननशोभम् ।
हेलातरलित–मधुरविलोचन–जनित–वधूजनलोभम् ॥
गजपतिरुद्रनराधिपचेतसि जनयतु मुदमनुबारम् ।
रामानन्दरायकविभणितं मधुरिपुरूपमुदारम् ॥२२॥

सूत्र – (सचकितम्) प्रिये मत्कनीयान् श्रीकृष्णवृन्दावनगमनमावेदयति । तद्वयमपि स्वनेपथ्योपचिताय याम (इति निष्क्रान्तौ) ॥२३॥

प्रस्तवाना ॥२४॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः कृष्णः)

कृष्णः - सखे रतिकन्दल ! पश्य पश्य रामणीयकं वृन्दावनस्य ॥२५॥

तथाहि–

उद्दामद्युतिपल्लवावलिचलत्पाणिस्पृशोऽमी स्फुरत्
भृङ्गालिङ्गितपुष्पसाञ्जनदृशो माद्यत् पिकानां रवैः ।
आरब्धोत्कलिका लताश्च तरवश्चालोलमौलीश्रियः
प्रत्याशं मधु सम्मदादिव रसालापं मिथः कुर्व्वते ॥२६॥

विदू – भो वयस्स तुज्झ एदं वुन्दाअणं रमणिज्जं मम उण भोअणालओ ज्जेव्व । जत्थ कहिम्पि सिहरिणी

भो वयस्य तवेदं वृन्दावनं रमणीयं मम पुनर्भोजनालय एव ।

कहिम्पि रसाला कहिम्पि सुरहि घिओं कहिम्पि सालि-
भत्तम् ॥२७॥

कृष्ण – सखे!

वसन्तरागेण

अपरिचितं तव रूपमिदं बत पश्यदिवोचितखेलम् ।
ललितविकस्वरकुसुमचयैरिव हसति चिरादतिवेलम् ॥
कलय सखे भुवि सारम् ।
त्वदुपगमादिव सरसमिदं मम वृन्दावनमनुवारम् ॥ध्रु॥
मृदुपवनाहति – चंचलपल्लवकरनिकरैरिव कामम् ।
नर्त्तितुमुपदिशतीव भवन्तं सन्ततमिदमभिरामम् ॥
सुखयतु गजपति–रुद्रमनोहर–मनुदिनमिदमभिधानम् ।
रामानन्दराय–कवि–रचितं रसिकजनं सुविधानम् ॥२८॥

सखे अतिमधुरोऽयं कोकिलानां रवः ॥२९॥

विदू–भो वअस्स ! तुज्झ वंशीए रओ, इदो वि महुरो तदो
विअह्माणं कण्ठरओ । ता तुए वंशी - बादिअदु मए वि
कण्ठरओ कादव्बो ॥३०॥

यत्र कुत्रापि शिखरिणी कुत्रापि रसाला कुत्रापि सुरभिघृतं कुत्रा-
पि शालिभक्तम ॥ २७ ॥

भो वयस्य तव वश्या रव इतोऽपि मधुरः । ततोऽपि अस्माकं कण्ठरवः । तस्मात् त्वया वंशी वाद्यतां मयापि कण्ठरवः कर्त्तव्यः ॥३०॥

कृष्ण:—यदभिरुचितं वयस्याय (वंशीं वादयते) ॥३१॥

विदू—भो सुदो दे वंसीरओ ममाबि कण्ठरओ सुणी अदु।
इति (मुखवैकृत्य परुषं) नदति ॥३२॥
(तरुशिखरानवलोक्य) भो जिदं अह्मेहिं तुज्झ वंशीए रएहिं एदे दासीए पुत्ता कोइला निहदं ठिदा । महउण कण्ठरएहिं कहिं वि पलाइदा । ता वअस्स मा गव्वो दे होदु ॥३३॥

कृष्णः—सखे पश्य पश्य, केनाप्यकरुणेन भग्नानि नवाशोकपल्लवानि चेतः खेदयन्ति ॥३४॥

विदू—भो वयस्स सुदं मए दासीए धीदाओ गोवीआओ एथ्थ कुसुमाणि आहरन्ति (सपरिहासम्) तुमम्पि तदो ज्जेव एदं वुन्दाअणं ण मुञ्चसि ॥३५॥

(नेपथ्थे)

वृन्दावने विहरतो मधुसूदनस्य
वेणुस्वनं श्रतिपुटेन निपीय कामम् ।



श्रुतस्ते वंश्या रवः ममापि कण्ठरवः श्रूयताम् ॥ ३२ ॥

जितमस्माभिः तव वंश्या रवैरेते दास्याः पुत्रकाः कोकिला निभृतं स्थिताः मम पुनः कण्ठरवैः कुत्रापि पलायिताः तत् वयस्य मा गर्व्वस्ते भवतु ॥ ३३

वयस्य श्रुतं मया दास्या पुत्रिका गोपिका अत्र कुसुमानि आहरन्ति । त्वमपि तत एव इदं वृन्दावनं न मुञ्चसि ॥ ३५ ॥

उद्यन्मनोजशिथिलीकृतगाढलज्जा
राधा विवेश कुतुकेन सखीकदम्बम् ॥३६॥

गोण्डकिरीरागेण—

कलयति नयनं दिशि दिशि वलितम् ।
पङ्कजमिव मृदुमारुतचलितम् ॥
केलिविपिनं प्रविशति राधा ।
प्रतिपदसमुदित-मनजिस-बाधा ॥ध्रु०॥
विनिदधती मृदुमन्थर-पादम् ।
रचयति कुञ्जरगतिमनुवादम् ॥
जनयतु रुद्रगजाधिपमुदितम् ।
रामानन्दरायकविगदितम् ॥ ३७ ॥

विदु—(कर्णं दत्वा) भो सुष्ठु मए जानिदम् ।

कृष्णः—किं

विदू—मं ज्जेव पुच्छसि ॥३८॥

(ततः प्रविशति सखीभिरनुगम्यमाना राधिका मदनिका वनदेवता च)

विदू—(पुरतोऽवलोक्य) भो वयस्स पेक्ख पेक्ख केणावि इन्दआलि एण संचालिदो कणअ पुत्तलिआ णिअर इध

सुष्ठु मया ज्ञातम् । मामेव पृच्छसि ॥ ३८ ॥

ज्जेव आअच्छदि। ता एदं एक्कं गेह्विअ पलाइस्सं मम दरिद्द वडुअस्स एदाए ज्जेव किदात्थदा हुविस्सदि (इति स्वैरं स्वैरं धर्त्तीमुपसर्पति) ।।३९।।

कृष्णः — धिङ् मुर्ख नायं कनकपुत्तलिकानिकरः किन्तु गोपीकदम्बकमिदम् ।।४०।।

विदू—(निरूप्य विहस्य) सुष्ठु तुए तक्किदं ता फलिदं दे वुन्दाअणागमणम् ।।४१।।

कृष्णः—धिङ् मुर्ख किं फलं मम वृन्दावनागमनस्य ।

विदू—एदाणं दासीए धीदानं सआसादो वुन्दाअणणअपल्लवाणं त्ति भणामि ।।४२।।

राधा—(पुरतोऽवलोक्य)अज्जे मअणि ए को एसो णीलुप्पलदलकोमलच्छइ कणअणिअरविच्छवसणो ईसिअ अलम्बिअ कन्धरं महुरमहुरं वेणुं वादेइ ।।४३।।

वयस्य पश्य पश्य केनापि इन्द्रजालिकेन सञ्चारितः कनकपुत्तलिकानिकर इत एव आगच्छति । तत इत एकां गृहीत्वा पलायिष्ये मम दरिद्रवटुकस्य एतयैव कृतार्थता भविष्यति ।। ३९ ।।

सुष्ठु त्वया तर्कितं तस्मात् फलितं ते वृन्दावनागमनम् ।।४१।

एतासां दास्याः पुत्रिकाणां सकाशाद्वृन्दावननवपल्लवानां प्रतिपालनमिति भणामि ।। ४२ ।।

आर्ये मदनिके क एष नीलोत्पलकोमलच्छविः कनकनिकरसदृशवसनं ईषदवलम्बितकन्धरं मधुरमधुरं वेणुं वादयति । ।।४३।।

मद–सखि न जानसि यस्तव मया कथितः ।

सोऽयं युवा युवतिचित्तविहङ्गशाखी
साक्षादिव स्फुरति पञ्चशरो मुकुन्दः ।
यस्मिन्नगते नयनयोः पथि सुन्दरीणां
नीविः स्वयं शिथिलतामुपयाति सद्यः ॥४४॥

कृष्णः—(मनागवलोक्य स्वगतम्) अहो शुभसमयजातत्वं कस्यचिद्वस्तुनः ॥४५॥

तथाहि—यदपि न कमलं निशाकरो वा
भवति मुखप्रतिमो मृगेक्षणायाः ।
रचयति न तथापि जातु-ताभ्या-
मुपमितिरन्यपदे पदं यदस्य ॥४६॥

विदू—जाणिदं मए दासीए धीदा एहिं गोविआहिं उक्क-णिठद-हिअओ सम्वुत्तोभवम् । ता एहि एदाणं दंशन-पथादो गदुअ सिहरिणीहिं रसालाहिं वि अप्पाणं निब्वुदं करेह्म पेक्ख मज्झण्णो जादो ॥४७॥

कृष्णः—सखे सम्यगुपलक्षितम् ॥४८॥

ज्ञातं मया दास्याः पुत्रीभिर्गोपिकाभिरुत्कण्ठितहृदयः संवृत्तो भवान् । तस्मात् एहि एतासां दर्शनपथात् गत्वा शिखरिणीभिः रसालाभिरपि आत्मानं निर्वृतं कुर्मः । पश्य मध्यान्हो जातः ॥ ४७ ॥

तथाहि—कथमिव परिखिन्ना व्योममात्र प्रयातुं
यदिह गलितवेगा वाजिनो युयमित्थम् ।
इति विततकरान्तः सन्नुपालब्धुमश्वान्
गगनमिव मिमीते मध्यमध्यास्य भानुः ॥४९॥

बटू—(आकुञ्चितलोचनश्चिरं निरीक्ष्य) वयस्स मएवि वण्णिदव्वो रइमण्डलो । आरोविअ चक्कभमिं भमिदो जह विस्सकम्मणा सूरो । अज्जवि तह सक्कारं भमिदं रइ-मण्डलं तक्केमि ॥५०॥

मद—सखि चिरविहारपरिश्रान्तासि तदेहि गच्छाव (इति निष्क्रान्ताः सर्वे ॥५१॥

॥ इति पूर्व्वरागो नाम प्रथमोऽङ्कः ॥ १ ॥

वयस्य मयापि वर्णयितव्यो रविमण्डलं आरोप्य चक्रभ्रमिः भ्रमितो यत् बिश्बकर्म्मणा सूर्य्यः । अद्यापि तस्य संस्कारभ्रमितं रविमण्डलं तर्कयामि ॥ ५० ॥

❀~~~~~~~~~~❀

द्वितीयाङ्कः

ततः प्रविशति मदनिका ।

मद—(पुरतोऽवलोक्य) कथमियमशोकमञ्जरी ॥ १ ॥

अशोक—देइ वन्दिज्जसि । गहिदकज्जभारव्व किम्पि चिन्तअन्ती कहिं पथ्थिदासि ॥२॥

मद—वच्छे महती खल्वियं वार्त्ता ॥ ३ ॥

अशोक—कथम्विअ ॥ ४ ॥

मद—वच्छे न जानसि प्रियसखीं राधामादाय कुसुमविहारार्थं गताः स्म ॥ ५ ॥

अशोक—अध इं तथ्थ ॥ ६ ॥

मद–तत्राशोकतरुमूले तया लोचनातिथिकृतोऽयं मुकुन्दः । ॥ ७ ॥

अशोक–ण क्खु विलसिदं किम्पि कुसुमाउहेण ॥ ८ ॥

देवि वन्द्यसे । गृहीतकार्य्यभारेण किमपि चिन्तयन्ती कुत्र प्रस्थितासि ॥ २ ॥

वत्से ॥ ३ ॥

कथमिव ॥ ४ ॥

अथ किं तत्र ॥ ६ ॥

न खलु बिलसितं किमपि कुसुमायुधेन ॥ ८ ॥

मद्–अथ किं ॥ ६ ॥

अशोक–ता एथ्थ किं पडिवन्नं तथ्थ भोदीए ॥१०॥

मद्–अयि सरले तत्रापि प्रष्टव्यास्मि ॥११॥

अशोक–अणुसरिदव्वो मुउन्दो ॥१२॥

मद्–अथ किं ॥१३॥

अशोक–अध कधं ताए लज्जातरला ए हिअअं तुए णादम् ॥१३।

मद्--वच्छे तावदेव त्रपावर्म्म बालानां हृदये स्थिरम् ।
यावद्विषमवाणस्य न पतन्ति शिलीमुखाः ॥१५॥

अशोक–तहवि किं ताए ज्ज व स्फुडीकिदं तुह्मेहिं वा अणुमिदम् ॥१६॥

मद–मयैवानुमितम् ॥१७॥

अशोक–कधं विअ ॥१८॥

मद–शशिनि नयनपातो नादरादुन्मदानां
रुतमनु च पिकानां कर्णरोधश्छलेन ।

तस्मादत्र किं प्रतिपन्नं भवत्या ॥ १० ॥
अनुस्मर्त्तव्यो मुकुन्दः ॥ १२ ॥
अथ कथं तस्या लज्जातरलाया हृदयं तया ज्ञातम् ॥१४॥
वत्से ॥ १५ ॥
तथापि किं तयैव स्फुटीकृतं युष्माभिर्व्वा अनुमितम ॥१६॥
कथमिव ॥ १८ ॥

प्रतिवचनमपार्थं यत्सखीनां कथासु
स्मरविलसितमस्यास्तेन किंचित् प्रतीतम् ॥१६॥

श्रीगन्धाररागेण -

हरि हरि चन्दन-मारुत-पिकरुतमनु तनुरतनुविकारम् ।
तिरयितुमिव सा कति कति सहसा रचयति न शिशुविहा-
रम् ॥ १ ॥

उपनतमनसिजवाधा ।
अभिनवभावभरानपि दधती शिव शिव सीदति राधा॥ध्रु०॥
अविधय-निश्चल-नयनयुगल-गलदम्बुकणाननुवारम् ।
रहसि हठादुपयाति सखीमनु रचयति सौहृदसारम् ॥
गजपति-रुद्र-मनोहरमहरहरिदमनु रसिकसमाजम् ।
रामानन्दरायकविभणितं विहरतु हरिपदभाजम् ॥२०॥

मद—त्वं पुनः कुत्र प्रस्थितासि ॥२१॥

अशोक-अहं पि ताए भणिदा सहि अहिणअ पउमदल
सेज्जा पज्जुसुसुअम्हि ता उवणे हि तारिसाइं पउमदलाइं
अदो तदत्थं पत्थिदह्मि ॥२२॥

तेन हेतुना ॥ १६॥

हरि हरीत्यव्ययं खेदे वर्त्तते । शिव शिवेत्यव्ययं खेदे
वर्त्तते ॥ २० ॥

अहमपि तया भणिता सखि अभिनवपद्मदलशय्यापर्य्यु-

मद—(स्वगतम्) अये अतिनिष्ठुरं बिलसति पुष्पचापः श्रुतं मया ।

सा दक्षिणानिल-कुहूरुत-भृङ्गनाद-
व्यथाजृम्भमाणमदना सुचिरं विचार्यम् ।
किंचित् सखीं शशिमुखीं सुमुखी बिबिक्ते
पर्याकुलाक्षरमिदं निजगाद राधा ॥२३॥

(तोडी-बराडीरागेण)

विदलित–सरसिजदलचयशयने ।
वारित-सकल-सखीजननयने ॥
वलते मनो मम सत्वरबचने ।
पूरय काममिमं शशिबदने ॥ ध्रु० ॥
अभिनवविष-किश-लयचयवलये ।
मलयजरसपरिषेवित निलये ॥
सुखयतु रुद्रगजाधिपचित्तम् ।
रामानन्दरायकविभणितम् ॥२४॥

मद–साधय शिवाः सन्तु ते पन्थानः । अहमपि मुकुन्दमनुसरिष्यामि ॥२५॥

अशोक—ता वन्दिज्जसि(इति निष्क्रान्ता) ॥२६॥

दसुकास्मि तस्माद्धुपनय तादृशानि पद्मदलानि अतस्तदर्थं प्रस्थितास्मि ॥ २२ ॥

मद- (परिक्रम्य आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) भोः शुकाः जानीत कुत्रायं द्रष्टव्यो मुकुन्दः। किं ब्रूत भाण्डीरतरुमूले शशिमुखीद्वितीयः प्रतिवसतीति। भवतु नियोजिता मयैव तत्र शशिमुखी (प्रेत्य) किं ब्रूत त्वं कुत्र प्रस्थितासीति। तत्रैवात्मानमपवार्य श्रोतव्योऽयं वृत्तान्तः इति तत्रैव गच्छामि (इति निष्क्रान्ता)॥२७॥

(विष्कम्भकः)

[भाविभूतवस्त्वंशसूचकः]॥२८॥

[ततः प्रविशति शशिमुखीद्वितीयः कृष्णः]

कृष्णः-इत इतः।

शशि- (अनङ्गपत्रिकामर्पयति)

कृष्णः- (वाचयति)।

सुइरं विज्झसि बिअअं लम्भइ मअणो क्खु दुज्जसं वलिअं।
दीससि सअलदिसासु तुमं दीसइ मअणो ण कुत्थावि॥२६॥

कृष्णः- (स्वगतम्) अये अतिभूमिं गतोऽस्या रागः। तदा-

तस्मात् बन्धसे॥ २६॥

विष्कम्भको भवेद्भाविभूतवस्त्वंशसूचक इति। वृत्ता-वर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भः आदावङ्कस्य दर्शितः॥ २८॥

सुदृढं विध्यसि हृदयं लभते मदनः खलु दुर्येशो वलीयः।
दृश्यसे सकलदिक्षु त्वं दृश्यते मदनो न कुत्रापि॥ २६॥

कलयाम्यौदास्येनास्या हृदयस्थैर्यम् ।

(प्रकाशं सावहित्थं) सखि ?

को वाऽयं मदनाभिधः कथमितः किम्वापराद्धं तया

येनायं विदयं दुनोति सुदृशं कंसस्य किं कोऽप्यसौ ।

(साटोपम्) तदादेशय क्वासौ ?

अद्यैनं भुजयुग्ममात्रशरणः सम्मर्द्य बालामिमा-

मव्यग्रां रचयामि किं मयि सति त्रासो ब्रजस्त्रीजने ॥३०॥

(आपटीक्षेपेण प्रविश्य)

विदू–भो वयस्स ण क्खु एसो कंसस्स को वि अहं ज्जेव मअणाभिओ ता तुए किं मह बह्मणस्स कादव्वम् ॥३१॥

कृष्णः–धिङ् मूर्ख अलं परिहासेन ।

विदू–भोअदि अह्माणं पिअवयस्सस्स – हत्थे लड्डु अजुअलं तुए दादव्वं पिअवअस्स तत्थ गदुअ मअणं णिराकरिस्सदि ॥३२॥

मद–(कर्णं दत्वा) अये निसृष्टार्थेयं दूती यतः,

इयं तत्तद्वचो वृन्दावने माधवसन्निधौ ।

राधारूपकथाव्याजादुवाचासत्तिकोविदा ॥

भो वयस्य न खलु एष कंसस्य कोऽपि अहमेव मदनाभिधस्तत् किं त्वया मम ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् ॥ ३१ ॥

भवति अस्माकं प्रियवयस्यहस्ते लड्डुकयुगलं त्वया दातव्यं प्रियवयस्य तत्र गत्वा मदनं निराकरिष्यति ॥ ३२ ॥

(निरूप्य विहस्य)

अमुष्या: प्रोन्मीलत् कमलमधुधारा इव गिरो
निपीय क्षीवत्वं गत इव चलन्मौलिरधिकम् ।
उदञ्चत् कामोऽपि स्वहृदयकलागोपनपरो
हरिः स्वैरं स्वैरं स्मितसुभगमूचे कथमिदम् ।

तद्भवतु अतिभूमिं गतो रागो माधुर्य्यमावहति ॥३३॥

कृष्णः–(पुनरपि पत्रिकां वाचयित्वा) ।
सखि सम्यगिदं नावकलितम् ।

गोपालबालकवृतो यमुनातटान्ते
वृन्दावने किमपि केलिकलां भजामि ।
कस्मादियं दिशि दिशि स्फुटरूपभाजं
मामेव पश्यति कुरङ्गकिशोरनेत्रा ॥३४॥

सामगुर्जरीरागेण -

गोपकुमारसमाजमिमं सखि पृच्छ कदा नु गतोऽहम् ।
कथमिव मामनुपश्यति दिशि दिशि कथमिव
कलयति मोहम् ॥१॥
सखि परिहर वचनबिलासम् ।
गोपशिशूनां विदितमिदं मम जनयति गुरुपरिहासम् ॥ध्रु०
यदि च कुलाचलयापि कुलस्थितिरनया परिहरणीया ।
किमिति तदा मयि रतिरतिविकला बाले किल करणीया॥

गजपतिरुद्रमुदे मधुसूदनवचनमिदं रसिकेषु ।
रामानन्दरायकविभणितं जनयतु मुदमखिलेषु ॥३५॥

शशि–(स्वगतम्) अहो पिअसहीए अथ्थाणाणुराओ ता किं एथ्थ कादव्वम् ॥३६॥

विदू–भो किं एदाए दुट्ठ गोवीधीदाए भणिदाए वअस्स पेक्ख पेक्ख ।

रइअरचलिदा हंसी मग्गइ च्छाअं कमलगुच्छस्स ।
मारुअधुअअरअत्ता पेक्खसि जं तं निआरेदि ॥३७॥

कृष्णः–(स्वगतम्) अहो वचनभङ्गी धूर्त्तस्य (प्रकाशम्) धिङ् मूर्ख किमप्रस्तुतमालपसि ॥३८॥

विदू–भो वअस्स मए ज्जेव्व पथ्थुदं भणिदम् ॥३९॥

मद–(स्वगतम्) सर्व्वथा कृतार्थासि अये राधिके ॥४०॥

शशि–(प्रकाशम्) महाभाअ असरिसं तुह्मारिसाण अनुगदवञ्चणम् ॥४१॥

कृष्णः–भद्रे अन्यदप्याकलय ।

प्रियसख्याः अस्थानानुरागः तत् किमत्र कर्त्तव्यम ॥ ३६ ॥

भोः किमेतया दुष्टगोपीपुत्रिकाया भणितया वयस्य पश्य पश्य–रवि करचलिता हंसी मृगयति छायां कमलगुच्छस्य । मारुत–धुततरात्मा पश्यसि यत्तां निवारयति ॥ ३७ ॥

भो वयस्य मयैव प्रस्तुतं भणितम् ॥ ३९ ॥

महाभाग असदृशं त्वादृशानां अनुगतवञ्चनम् ॥ ४१ ॥

दयितो दयितस्तस्या वालेयं कुलपालिका ।
अकाण्डे किमसौ मुग्धे धत्तामाचारविप्लवम् ॥४२॥

विदू–भोदि अह्माणं पिअवअस्सो धम्मसरणो ता ओसरदु भोदी (कृष्णस्य हृदि हस्तं दत्वा) भोदि मा उत्तम्म सा ज्जेव्व पिअवअस्सस्स हिअए कुरकुराअदि । ता मए ज्जेव फुडं कादव्वं सव्वं । (कर्णे) भो वअस्स तुह्मेहिं पि सा सिविणे वार सहस्सं दिट्ठा । एन्हि कीस अथ्थि-ज्जन्तो अप्पा अत्थाविज्जदि ॥४३॥

कृष्णः–धिङ् मूर्ख मम स्वप्नवृत्तान्तः कथं त्वया ज्ञातः ।

विदू–सिविणे वि किं परिहरसि तहिं ज्जेव्व अह्मेहिं पिदिट्ठम् ॥४४॥

कृष्णः–(स्वगतम्) यद्यप्यनेन वाचाटवटुना परिहासशील-तया आलपितं तथापि सद्वादो वृत्तः । भवतु तथापि जिज्ञासनीयस्वभावा हि वालारमण्यः । (प्रकाशं) भद्रे तन्निवर्त्यतां मसदृशात् साहसादियं वाला (विदूषकं प्रति)

भवति अस्माकं प्रियवयस्यो धर्मशरणः तदपसरतु भवती । भवति मा उत्ताम्य सैव प्रियवयस्यस्य हृदये कुरकुरायते तस्मात् मयैव स्फुटं कर्त्तव्यं सर्वम । भो वयस्य युष्माभिरपि सा स्वप्ने वारसहस्र दृष्टा इदानीं कस्मादर्थ्यमान आत्मा अर्थाप-यसि ॥४३॥

स्वप्नेऽपि किं परिहरसि अपितु न तस्मिन्नेवास्माभिरपि दृष्टम्॥४४

वयस्य तदेहि वयमपि वत्साहरणाय यामः । भद्रे त्वमपि सानुनयमेनां निवर्त्तयेति । ४५॥

मल्लाररागेण -

शशिनि न रागं भजते नलिनी ।
रविमनु नैव वृषस्यति रजनी ॥१॥
शशिमुखि वारय वारिजवदनाम् ।
अनुचितविषयविकस्वरमदनाम् ॥ध्रु ०॥
कुलवनितानामिदमाचरितम् ।
परपुरुषाधिगमे गुरुदुरितम् ॥
सा यदि गणयति न कुलचरित्रम् ।
किमिति वयं कलयाम न चित्रम् ।
उदयतु रुद्रगजाधिप-हृदये ।
रामानन्द-भणितमतिसदये ॥४६॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) ॥४७॥

इतिभावपरीक्षा नाम द्वितीयोऽङ्कः ॥ २ ॥

कुलस्त्रीणामिदमाचरणं काक्वा नैवेत्यर्थः कथं तत्राह पर-पुरुषेति । गुरु दुरितमिति उत्कटं पापं भवतीत्यर्थः ॥ ४६ ॥

-*[-]-*—*[-]-*-

तृतीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति अशोकमञ्जरी]

अशोक—अए सुदं मए मअणिआए वणदेअदाए ससिमुहीए सद्धं किम्पि रहस्सं कुणन्ती माहवीलदामण्डवसआसे पिअसही चिट्ठदि ता पेक्खिअ गमिस्सं। (अग्रतोऽवलोक्य समुपसर्प्य च) अए एदाओ लहु लहु किम्पि जम्पन्ति ता ण जुज्जदि एत्थ परिसिदुं। (इति निष्क्रान्ता) ॥ १ ॥

[ततः प्रविशति शशिमुखीमदनिकाभ्यां प्रबोध्यमाना राधा]

राधा—(दीर्घमुष्णंच निश्वस्य) सच्चकं ज्जेव्व परिहिदम्हि माहवेण ॥२॥

(सामगुर्जरीरागेण)

कुलवनिताजनधृतमाचारम् ।
तृणवदगणयं गलितविचारम् ॥

अये श्रुतं मया मदनिकया वनदेवतया शशिमुख्या च सार्द्धं किमपि रहस्यं कुर्वती माधवीलतामण्डपसकाशे प्रियसखी तिष्ठति तत्प्रेक्ष्य गमिष्यामि । अये एता लघु लघु किमपि जल्पन्ति तन्न युज्यतेऽत्र प्रवेष्टुम् ॥ १ ॥

सत्यमेव परिहृतास्मि माधवेन ॥ २ ॥

शिव शिव किम्वाचरितमशस्तम् ।
विधिरधुना बद वशयतु कस्तम् ॥ ध्रु० ॥
शिशुरपि युवतिरिवाहितभावा ।
विगलितलज्जितमहभिव का वा ॥
गजपति-रुद्रमुदे समुदितम् ।
रामानन्दरायकविगीतम् ॥३॥

शशि—विण्णिदो जेव्व सव्वो वुत्तन्तो ता सअं जेव्व विआरीअदु ॥४॥

राधा—(संस्कृतमाश्रित्य)

श्रावं श्रावं सुसाम-श्रुतिसमितपरब्रह्म बंशीप्रसूतं
दर्शं दर्शं त्रिलोकीवरतरुणकलाकेलिलावण्यसारम् ।
ध्यायं ध्यायं समुद्यद्द्युमणिकुमुदिनीबन्धुरोचिः सरोचि-
श्छायं श्रीकान्तसङ्गं दहति मम मनो मां कुकूलाग्नि-
दाहम् ॥५॥

शशि—सहि मुञ्च अत्थाणग्गहं ॥६॥ (संस्कृतमाश्रित्य)

विधिर्बिधानम् । तं कृष्णम् ॥ ३ ॥

वर्णित एव सर्ववृत्तान्तः तत्स्वयमेब बिचार्यताम् ॥ ४ ॥

सुसाम शान्त श्रुतिसमितं वेदतुल्यं च यत् बंश्याप्रसूतं परब्रह्म तत्पुनः पुनः श्रुत्वा । द्युमणिः सूर्य्यः । कुमुदिनीबन्धुश्चन्द्रः । कुकूलाग्निस्तुषाग्निः ॥५॥

सखि मुञ्च अस्थानाग्रहम् ॥ ६ ॥

यद्यद्व्यञ्जितमञ्जनप्रतिकृतौ कृष्णे त्वदर्थं मया
तत्तत्तेन निवारितं शिशुदशाभावप्रकाशैरलम् ।
आस्तामुत्कलिकाप्रसूनविगलन्माध्वीकनद्धं विषं
कृष्णध्यानमितोऽन्यतः सुवदने सङ्कल्पमाकल्पय ॥७॥

(सुहयीरागेण)

हीनं पतिमपि भजते रमणी ।
केशरिणं किमु कलयति हरिणी ॥१॥
राधिके परिहर माधवरागमये ॥ध्रु०॥
क्षीणे शशिनि च कुमुदवनीयम् ।
भजति न भावं किमु रमणीयम् ।
सुखयतु गजपतिरुद्रनरेशम् ।
रामानन्दरायगीतमनिशम् ॥८॥

राधा—[सास्रं] देवि मदनिके कः प्रकारः ।
प्रेमच्छेदरुजोऽवगच्छति हरिर्नायं नच प्रेम वा
स्थानास्थानमवैति नापि मदनो जानाति नो दुर्बलाः ।
अन्यो वेद न चान्यदुःखमखिलं नो जीवनं वाश्रवं
द्वित्राण्येव दिनानि यौवनमिदं हाहा विधेः का गतिः ॥६

मद—कथमेवं उत्ताम्यसि यतः
समाकृष्टा दूरात् किमपि यदि सा केतकिवन-
प्रसूनेनोन्मीलत् सुरभिभरसारेण नियतम् ।

अथ भ्रामं भ्रामं रजसि रसमालोक्य न मना-
गपि प्रान्तप्राप्ता परिहरति तन्नो मधुकरी ॥१०॥

राधा—(धैर्यमवलम्ब्य) परित्यक्त एवेत्यर्धोक्तेन (समा-
श्वसोत्कम्पं) देवि नायं ममापराधः यतः ।

यदा यातो दैवान्मधुरिपुरसौ लोचनपथं
तदास्माकं चेतो मदनहतकेनाहृतमभूत् ।

(क्षणं स्थित्वा दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य)

पुनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि दृशोरेति पदवीं
विधास्यामस्तस्मिन्निखिलघटिका रत्नखचिता ॥११॥

मद—(स्वगतम्) अतिभूमिं गतोऽस्या अनुरागस्तदति-
प्रियकथनेनान्यमानसं रचयामि । (प्रकाशं) वत्से पश्य
पश्य ॥१२॥

योऽयं त्वया स्वकरपुष्करसिक्तमूलः
सम्वर्द्धितः सुतनु बालरसालशाखी ।
जातः स ते मुकुलदन्तुरमौलिरीष-
न्मन्ये तदेव मधुपाः प्रियमालपन्ति ॥१३॥

राधा—(सत्रासोत्कम्पं) हला शशिमुखि स्मर्त्तव्यास्मि ।

मद—(स्वगतम्) अहो केयमनर्थपरम्परा स्वयमुपस्थिता ।
[प्रकाशम्] वच्छे मातिविक्लवाभूः उपलक्षितमेवास्य
सानुरागहृदयम् ॥१४॥

[देशागरागेण]

सरसकथासु कथं पुलकाचितमाननकमलमजस्रम् ।
कलयत चारु-हसित-नववलितं परिहृतकेलिसहस्रम् ॥
मुग्दे परिंहर शङ्कितमधिकमये ॥ ध्रु० ॥
आदरमधुरमिमामनुवेलं कथमालपति ससारम् ।
सुमुखि सखीं तव तदपि मनो बत कलयति किमु न विचारम् ॥
गजपतिरुद्रनराधिपहृदये वसतु चिरं रससारे ।
रामानन्दरायकबिभणितं परिचितकेलिविचारे ॥१५॥

राधा—देवि !

अनुमितमम्बुपयोदे तनुपरिकलिता दावानलज्वाला ।
वपुरतिललितं बाला शिव शिव भविता कथं हरिणी ॥१६

मद—वत्से नियोजितापि मया माधवी तत् परिज्ञानाय त्वत् प्रतिच्छन्दकसनाथचित्रफलकहस्ता ॥१७॥

[ततः प्रविशति चित्रफलकहस्ता माधवी]

माधवी—देवि वन्दे ॥१८॥

मद—वच्छे स्वागतं तेऽपि विदितं रहस्यम् ॥१९॥

माधवी—अथ किम् ॥२०॥

वत्से । अस्य श्रीकृष्णस्य ॥१४॥ चिरं चिरकालं वाप्य ॥१५॥

मद—तदावेदय ॥२१॥

माधवी—फलकमावेदयति ॥२२॥

राधा—[सलज्जम्] (फलकं याचते) ॥२३॥

माधवी—देहि मे पारितोषिकम् ॥२४॥

मद—[स्वगतम्]

ध्रुवं तदस्या हृदयं प्रतीत्य
स्फुटं मुकुन्दोऽपि चकार रागम् ।
भग्नः कदाचिद् यदयं प्रमादात्
प्रेमाङ्कुरो योजयितुं न शक्यः ॥

[प्रकाशम्] वच्छे उपनय फलकम् ॥२५॥

माधवी—(मनाग्दर्शयित्वाञ्चलेनाच्छादयति) ॥२६॥

शशि— [बलाद्गृहीत्वावलोकयति] अए कधं एदाइं अक्खराइं (इति वाचयति)

मा शङ्किष्ठाः सुमुखि विमुखीभावमेतस्य नस्या
दानन्दाय प्रथममुकुला पद्मिनी कस्य कामम् ।
आघ्रायैव प्रशिथिलधृतिर्गन्धमस्यास्तथापि
नालम्भेत क्षणमपि युवा किं नु मध्यस्थभावम् ॥२७॥

माधवी—सहि वड्ढसे पियाणुराएण ॥२८॥

अये कथमेतानि अक्षराणि ॥ २७ ॥
सखि सुखं वर्धसे प्रियानुरागेण ॥ २८ ॥

राधा—[दीर्घमुष्णंच निश्वस्य] हला कहिं दाणीं अह्माणं ईरिसं भाअधेअं [मदनिकां प्रति] एत्थ को अत्थो ॥२६

मद—तवैतदेव हृदयं प्रतीत्य

स्फुटं मुकुन्दोपि चकार रागम् ।
भग्नः कदाचित् यदयं प्रमादात्
प्रेमाङ्कुरो योजयितुं न शक्यः ॥

तद्वत्से मातिविक्लवाभूः फलितोऽस्माकं मनस्कारतरुः॥३०॥

राधा—अज्जवि ण पच्चेमि ता एत्थ भोदी ज्जेव्व सरणम् ॥३१

मद—एषाहं चलितास्मि तदनुमन्यस्व ॥३२॥

राधा—सप्रणामं [संस्कृतमाश्रित्य] भगवति !

निकुञ्जोऽयं गुञ्जन्मधुकरकदम्बाकुलतरः
प्रयातः प्रायोऽयं चरमगिरिशृङ्गं दिनमणिः ।
मरुन्मन्दं मन्दं तरलयति मल्लीमधुकरान्
किमन्यद्वक्तव्यं बिधुरपि बिधाता समुदयम् ॥३३॥

[कर्णाटरागेण]

मञ्जुतरगुञ्जदलिकुञ्जमतिभीषणम् ।
मन्दमरुदन्तरगगन्धकृतदूषणम् ॥

चित्तापरिपूर्णतारूपतरुः । चित्ताभोगमनस्कार इत्यमरः ॥३०॥
अद्यापि न प्रत्येमि तदत्र भवत्येव शरणम् ॥३१॥

सकलमेतदीरितम् ।
किञ्च गुरुपञ्चशरचञ्चलं मम जीवितम् ॥ध्रु०॥
मत्तपिकदत्तरुजमुत्तमाधिकरं वनम् ।
सङ्गसुखमङ्गमपि तुङ्गभयभाजनम् ॥
रुद्रनृपमाशु बिदधातु सुखसङ्कुलम् ।
रामपदधामकबिरायकृतमुज्ज्वलम् ॥३४॥

मद–वत्से अस्मिन् बकुलपादपोपकण्ठे द्रष्टव्यास्मीति निष्क्रान्ता ॥३५॥ (इतरा अपि निष्क्रान्ताः)

इति श्रीजगन्नाथवल्लभनाटके भावप्रकाशो
॥ नाम तृतीयोऽङ्कः ॥

आधिर्मानसीव्यथा पुंसाधिर्मानसीव्यथा इत्यमरः । सङ्गेन सुखं यस्य । संकुलं व्याप्तम् । धाम आश्रयः ॥३४॥

-*-[०]-*—*-[०]-*-

❀ :+: चतुर्थाङ्कः :+: ❀

ततः प्रविशति मदनिका ।

मद–अये श्रुतं मदनमञ्जरीमुखात् यद्बकुलपादपोपकण्ठे वटुद्वितीयो निवसति मुकुन्दः । तत्तत्रैव गच्छामीति (पुरतोऽवलोक्य) अये मुकुन्दोऽयं वटुना सह किमपि

मन्त्रयन् सविषादमास्ते तद्ध्रुवमेव विलासितमत्र कुसुम-शायकेन । तन्माधवीगुच्छान्तरिता शृणोमीत्यात्मानमपवार्य स्थिता ।

(ततः प्रविशति मदनावस्थां नाटयन् विदषकेन सहालपन् कृष्णः ॥१॥)

मद—(स्वगतम्) मालवरागेण ।

बदनमिदं विधुमण्डलमधुरं विधुरं वत सुचिरेण ।
कलयदनङ्गशराहतिमनिशं मलिनमिवेन्दुकरेण ॥
माधववपुरति खेदम् ।
जनयति चेतसि शतधा भेदम् ॥ध्रु०॥
परिहृतहारं हृदयमुदारं धूसरितं विरहेण ।
मरकतशैलशिलातलमाहतमहह किमिन्दुकरेण ॥
गजपतिरुद्रं सुकृतसमुद्रं शशिकिरणादपि शीतम् ।
रामानन्दरायकविभणितं सुखयतु रुचिरं गीतम् ॥२॥

कृष्णः—सा चेदुत्पललोचना सहचरीवक्त्रेण मे निर्भरं
प्रेमाणं प्रकटी चकार तदयं हासो मया कल्पितः ।
हाहा शुक्तिधिया महार्घमणिरभूत् त्यक्तो मया दैवतो
यायाल्लोचनगोचरं पुनरियं पुण्यैरगण्यैर्मम ॥३॥

चन्द्रमण्डलादपि मधुरं । बिधुरं म्लानं । चन्द्रकिरणाहति कलयत्प्राप्नुवत पद्मं यथा बिधुरं तद्वत् । अतिखेदं दुःखयुक्तम् । परिहृतस्त्यक्तः । ईषत् पाण्डुरस्तु धूषर इत्यमरः ॥ २ ॥

बिदू–भो वअस्स भणिदं जेव्व मए 'मा एसा अणुराइणी परिहरीअदु' त्ति एण्हिं कीस उत्तम्मसि ? भोअणेच्छाए निउत्ताए लड्डुअ–मोदएहिं किं कादव्वं ता एत्थ अहं जेव्व उबाओ ॥४॥

कृष्ण:–कथमिव ?

बिदू–अहं बह्मणो मन्तं आवटिअ आवटिअ इमं आअड्ढइस्सम् ॥५॥

कृष्णः–ज्ञातं ते ब्राह्मण्यं तदाकलय मदनिकाम् ॥६॥

(प्रविश्य)

मदनिका—स्वस्ति वत्साय ॥७॥

कृष्णः—(पुरतोऽवलोक्य) कथमियं मदनिका (सप्रश्रयम्) देवि ! स्वागतं ते ? ॥८॥

मद—(सस्मितम्) महाभाग मुखचन्द्रदर्शनेन ॥६॥

बिदू–कुसुमशरव्वथिदो अम्हाणं पिअवअस्सो, ता आणीअदु सा जेव्व गोवकुमारिआ ॥१०॥

भावप्रधाननिर्द्देशात् गोचरत्वमित्यर्थः ॥ ३ ॥

भो वयस्य भणितमेव मया एषा अनुरागिणी परिह्रियतामिति । इदानीं कस्माद्धुत्ताम्यसि । भोजनेच्छायां निवृत्तायां लड्डुकमोदकैः किं कर्त्तव्यं तदत्राहमेवोपायः ॥ ४ ॥

अहं ब्राह्मणो मन्त्रमावर्त्य आवर्त्य इमामाकर्षयिष्यामि ॥५॥

कुसुमशरव्यथितोऽस्माकं प्रियवयस्यस्तस्मादानीयतां सा

कृष्णः- (सलज्जम्) धिङ् मूर्ख ? मैवं भण ।।११।।

विदू-अह्मे वह्मणा उज्जुआ फुडं जेव्व भणामो ।।१२।।

मद-(सस्मितम्) वत्स अपि नाम अमिथ्यावचनोऽसि ।।१३।।

विदू-अधइं पेक्खध पेक्खध एदाइं पउमपत्ताइम् इति मर्मर-पत्राणि दर्शयति । (संस्कृतमाश्रित्य) ।।१४।।

दुःखिवराडीरागेण ।

नलिनवनं बनमालिकृते कृतमुज्झितकुसुमपलाशम् ।
पल्लवमपि वृन्दावनमनु कलयसि ललितविकाशम् ।।
सरले पश्यसि किमु नहि कृष्णम् ।
त्वयि निहिताशं गलितविलासं चातकमिव घनतृष्णम्।।ध्रु।।
विधुमिव वीक्ष्य विधुन्तुदमानय चपलमिति प्रतिवेलम् ।
वदति कथं वद यदि मदनो हृदि न वसति विरचितखेलम् ।।
गजपतिरुद्रमुदं तनुतामिति रामानन्दरायसुगीतम् ।
निभृतमनोभवविशिख-पराभवहरिविरहेण समेतम् ।।१५।।

एब गोपकुमारिका ।। १० ।।

बयं ब्राह्मणा ऋजबः स्फुटमेब भणामः ।।१२।।

अमिथ्याबचनः सत्यवचनः त्वम् ।।१३।।

अथ किं पश्यत पश्यत एतानि पद्मपत्राणि। अतिशुष्क-पत्राणि ।।१४।।

कृते निमित्तं । विधुमिब कश्चिद्वीक्ष्य किमुत बिधुं वीक्ष्य। राहुमानय इति प्रतिक्षणं बदति सति। निःशेषं यथा स्यात्तथा

मद–किमेतावता ॥१६॥

विदू–तुम्पि पिअवअस्सो जादो जाणिदम्पि ण जाणासि ता सअं जेव्व गदुअ मए आणिदव्वा । अहम्पि णिसिट्ठत्थो दूदो (इति गन्तुमिच्छति) ॥१७॥

कृष्णः–(उत्तरीये गृन्हाति) ॥१८॥

मद–वत्स कृष्ण ? किमिति मय्येव गोपयसि ॥१६॥

कृष्णः–देवि किंचित्प्रष्टव्यासि ॥२०॥

मद–विश्रब्धमभिधीयताम् ॥२१॥

कृष्णः–तवास्यादेतस्या बदनरुचमाकर्ण्य शशिनः
कृतावज्ञा यस्मादयमपि रुजं तद्वितनुताम् ।
तदङ्गे नासङ्गं भजत इति यो मे वहुमतः
कथं सोऽपि प्राणैर्मम मलयवातो विहरति ॥२२॥

मद–(स्वगतम्) कृतार्थास्माकं मनोरथेन सार्द्धं राधिका, तदस्या अपि विरहावस्थां प्रकाशयामि । (प्रकाशम्) वत्स ? सापि लावण्यमात्रशेषा कल्याणी ॥२३॥ तथाहि -
शिलापट्टे हैमे तुहिनकिरणं चन्दनरसै
रियं तन्वी पिष्टा तनुमनु बिलेपं मृगयते ।

भूतो धृतो मनोभवस्य कन्दर्पस्य बिशिखस्य बाणस्य पराभवो येन तस्य हरेर्विरहेण समेतं संयुक्तम् ॥१५॥

त्वमपि प्रियबयस्यो जातः ज्ञापितमपि न जानासि तत्–स्वयमेब गत्वा मया आनेतव्या अहमपि निसृष्टार्थो दूतः ॥१७॥

क्षणं स्थित्वा हा हा सरसविसिनीपत्रशयने
समुत्तस्थौ यावज्ज्वलति न चिगन्मर्म्मरमिदम् ॥२४॥

(सामतोडोरागेण)

निरवधिनयनसलिलभवसादे ।
पतित कृशा परिचलति च पादे ॥
माधव गुरुतरमनजिसवाधा ।
हरिहरि कथमपि जीवति राधा ॥ध्रु॥
निवससि चेतसि कथमिव बामम् ।
शिव शिव शमयसि तदपि न कामम् ।
गजपतिरुद्रनृपतिमविगीतम् ।
सुखयतु रामानन्दसुगीतम् ॥२५॥

बिदू—भोदि साहसियाओ गोविआओ होन्ति त्ति तक्केमि, जं चन्दचन्दणेहिं अणुलेवणं मग्गेन्ति । अह्माणं पिअवयस्सो उण चन्दं पेक्खिअ दिणअर विअ उलूओ कहिं वि ओदारिदसरीरो णअणजुअलं मुद्दिअ चिट्ठदि । चन्द-

---

विसिनी पद्मिनी । इदं बिसिनीपत्रम ॥२४॥

सादे कर्दमे । निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री सादकर्दमाबित्यमरः । इवेति वाक्यालङ्कारे । बामं प्रतिकूलं । समयसि दबयसि । तदपि तथापि अविगीतं निर्दोषम् ॥२५॥

णाणं वाअं पि लम्भिअ सिद्धतन्तं विअ भुअङ्गो इदो तदो ओसरेदि ॥ २६ ॥

कृष्ण:- (स्वगतम्) साधु भणितम् (प्रकाशम्) धिङ् मूर्ख मातिबाचालो भव ॥२७॥

मद—एतस्या हृदयपरीक्षणाय कति कति प्रकाशिता न धर्मा: ॥२८॥

कृष्णः—(स्वागतं सातङ्कम्) अपि नाम निवृत्तोयं मदभि- लाषतः ? ॥२९॥

मद–तदस्तु ।

यदा नासौ दोषं गणयति गुरूणां कुबचने
न वा तोषं धत्ते सरसबचने नर्म-सुहृदाम् ।
बिषाभं श्रीखण्डं कलयति बिधुं पाबकसमं
तदस्यास्तद्वृत्तं त्वयि गदितुमत्राहमगमम् ॥३०॥

भवति साहसिका गोपिका भवन्ति इति तर्कयामि यच्चन्द्र-चन्दनैरनुलेपनं मृगयन्ति अस्माकं प्रियबयस्य पुनः चन्द्रं प्रेक्ष्य दिनकरमिब उलूकः कुत्रापि अपवारितशरीरो नयनयुगलं मुद्र-यित्वा तिष्ठति । चन्दनानां बातमपि लब्ध्बा सिद्धतन्त्रमिब भुजङ्ग इतस्ततोऽपसरति ॥२६॥

असौ राधा । श्रीखण्डं चन्दनं । कलयति पश्यति । पाबकसमं अग्नितुल्यं । गदितुं वक्तुम ॥३०॥

कृष्णः-(सोच्छ्वासम्)

त्वञ्चेदवञ्चनपरे स्मरवारिराशे-
रुद्धर्तुमेषि तदकारणवत्सलासि ।
तत्केशरद्रुमनिकुञ्जगृहे प्रसाद्य
तामानयस्व नयकोविदतां तनुष्व ॥३१॥

मद-वत्स सत्यमेवेदम् ॥३२॥

बिदू-भोदि उज्जुए ! सच्चकं जेव्व एदं एत्थ अहं जेव्व पडिभू बह्मणो ॥३३॥

कृष्णः-अलमन्यथा सम्भावनया कुरु मत्प्रतिकारम् ॥३४॥

मद-इयं प्रस्थितास्मि स्वस्ति वत्साय (इति निष्क्रान्ता) ॥३५॥

(ततः प्रविशति संकेतोचितवेशा राधिका ।

राधा-सहि माहवि ! विप्पलम्भिदह्मि भवदीहिम् ॥३६॥

(कामकेलिरागेण)

तिमिरतिरोहितसरणी ।
गिरिषु दरीषु समेव हि धरणी ॥
चिरयति किं सखि देवी ।
विधिरपि मयि किमु नहि हितसेवी ॥ ध्रु ॥

भवति ऋजुके सत्यकमेवेदं तत्राहमेव प्रतिभूर्ब्राह्मणः ॥३३॥
सखि माधवि विप्रलम्भितास्मि भवतीभिः ॥३६॥

अतिवाहितमतिभीमम् ।
विफलमिदं किमु गहनमसीमम् ॥
सुखयतु रुद्रगजेशम् ।
रामानन्दरायकृतमनिशम् ॥३७॥

माधवी–सखि ! अलमन्यथा सम्भावनया, आगतामिव देवी-
मवधारय ॥३८॥

(ततः प्रविशति मदनिका)

मद—वत्से दिष्ट्या वर्द्धसे ॥३६॥

राधा–(सहर्षोच्छ्वासम्) देवि अध को तत्थ वुत्तन्तो ? ॥४०॥

मद—वलवति मदनज्वरे यः स्यात् ॥४१॥

राधा–कधम्बिअ ? ॥४२॥

मद—इन्दुं निन्दति चन्दनं विकिरति प्रालम्वकं मुञ्चति
प्रालेयात्त्रसति प्रियं परिजनं नाभाषते संप्रति ।
गोविन्दस्तव विप्रयोगविधुरः किं किं न वा चेष्टते
त्वत्कुञ्जोदरतल्पकल्पनपरं राधे तमाराधय ॥४३॥

तिमिरेति अन्धकाराच्छन्नमार्गः । अतिबाहितमतिक्रान्तम् ।
गहनं वनम् ॥३७॥

अथ कस्तत्र वृत्तान्तः ॥४०॥

कथमिव ॥४२॥

प्रालम्वकं ऋजुलम्बिमालं । प्रालेयात् नीहारत् ॥४३॥

[अथ निकुञ्जे कृष्णः]

कृष्ण.—सखे कथं चिरयति मदनिका (सातङ्कम्)

इयं तन्वी पीनस्तनजघनभारालसगति-
र्विदूरे कुञ्जोऽयं मम रचितसंकेतवसतिः ।
स्वतो भीरुर्बाला गहनमपि घोरान्धतमसं
कथंकारं सा मामभिसरतु को मेऽत्र शरणम् ॥४४॥

(क्षणं चिन्तां नाटयित्वा दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य)

किमेषा मत्वा मामपरिचितभावं विमुखतां
प्रयाता विश्वासं किमु सहचरीवाचि न गता ।
अथ श्रान्ता वर्त्मन्यतितिमिरभाजीह विपिने
न शक्ता तन्वङ्गी स्मरशरहता वा ऽचलितुम् ॥४५॥

[पुरतोऽवलोक्य] अये कथमुदितप्रायोऽयं चन्द्रः ।

तथाहि –

यथेदं कोकानां प्रसरतितरां काकुविरुतं
यथा स्फीतं स्फीतं भवति परितः कैरवकुलम् ।
यथा मूर्च्छन्मूर्च्छत् प्रतिपतमिदं वारिजवनं
तथा शङ्के चन्द्रः प्रथमगिरिवीथ्यां विहरति ॥४६॥

चिरयति बिलम्बं करोति ॥४४॥ मत्वा बुद्ध्वा ॥४५॥
स्फीतं स्फीतं अतिफुल्लं । मूर्च्छन्मूर्च्छत् अभिम्लानं । प्रति-
पदं प्रतिस्थाने । वारिजवनं पद्मवनम् ॥४६॥

[सखेदं]

सख्या वाचि कथञ्चन प्रतियती बालान्धकारोचिते
नैषा वेशभरेण वा गतवती बर्त्मन्यथार्द्धे मम ।
अस्मिन् शक्रदिशं शशांकहतके स ंदूषयत्युन्मना
नागन्तु ं न च गन्तुमद्य चतुरा किम्बा करिष्यत्यसौ ॥४७

सबिनयाञ्जलिं बद्ध्वा ।

रे पूर्वपर्वत सखे कृपया मम त्वं
तुङ्गान्यमूनि तनु शृङ्गशतानि कामम् ।
याते बिलोचनपथं शशिनि प्रयाणो
बिघ्नो भवेन्मृगदृशो मम जीविते च ॥४८॥

विंदू— (कर्णं दत्वा) भो सुणीअदु किं रुणु रुणु सद्दं कुणई ॥४६॥

कृष्णः–(श्रु तिमभिनयति)

[नेपथ्ये]तन्मञ्जीररवः किमेष किमु वा भृङ्गावलीनिस्वन-
स्तत्काञ्चीरणितं नु मन्मथवतां किं सारसांनां रुतम् ।

अस्मिन्समये शक्रदिशं पूर्व्वदिशं । उन्मना उत्कण्ठित-मानसा ॥४७॥

भो श्र ूयतां किं रुणु रुणु शब्दं करोति ॥४६॥

मञ्जीरः नूपुरः । पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रिया-मित्यमरः । काञ्चीरणितं क्षुद्रघण्टिकाध्वनिः । स्त्रीकट्यां मेखला

एवं कल्पयतो विकल्पमचिरादालम्व्य सख्याः करं
गोविन्दस्य निकुञ्जकेलिसदने भूषाभवद्राधिका ॥५०॥

(मालवश्री रागेण)

चिकुरतरङ्गकफेनपटलमिव कुसुमं दधती कामम्
नटदपसव्यदृशा दिशतीव च नर्तितुमतनुमवामम् ।
राधा माधवविहारा ।
हरिमुपगच्छति मन्थरपदगतिलघुलघुतरलितहारा ॥ध्रु
शङ्कित-लज्जितरसभरचञ्चलमधुरदृगन्तलवेन ।
मधुमथनं प्रति समुपहरन्ती कुवलयदामरसेन ॥
गजपतिरुद्रनराधिपमधुनातनमदनं मधुरेण ।
रामानन्दरायकविभणितं सुखयतु रसविसरेण ॥५१॥

विदू— (पुरतोऽवलोक्य) भो वअस्स अम्हेहिं जिदं एसा तत्थभोदी आअच्छदि त्ति लक्खीअदि ॥५२॥

काञ्ची सप्तकी रसना तथा। क्लीवे सा रसनञ्चयाथ पुंस्कट्यां शृङ्खलं त्रिषु । कलायतः कुर्व्वतः ॥ ५० ॥

अपसव्यदृशा दक्षिणदृशा वामं शरीरं सव्यं स्यादपसव्यन्तु दक्षिणमित्यमरः । रसेन कौतुकेन । अधुनेति इदानीन्तनकन्दर्पम् ॥ ५१ ॥

भो वयस्य जितमस्माभिः एषा तत्र भगवती आगच्छतीति लक्ष्यते ॥ ५२ ॥

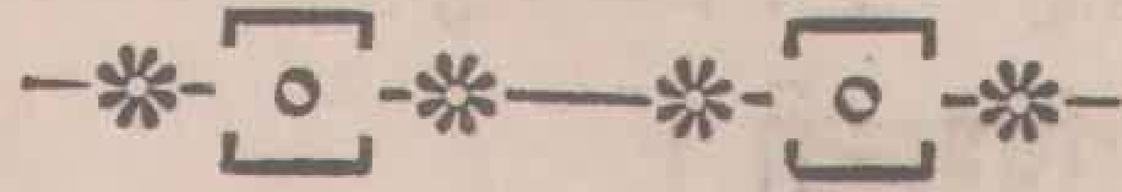
(ततः प्रविशति मदनिका)

मद-वत्सौ सम्पन्नश्चिरेण सुहृदां मनोरथः तन्मामनुमन्यस्व स्थानान्तरवासगमनाय ॥५३॥

विदू—मम्पि निउञ्जान्तरवासगमणस्स । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे) ॥५४॥

इति राधाभिसारश्चतुर्थोऽङ्कः ॥ ४ ॥

वत्सौ राधाकृष्णौ । ममापि निकुञ्जान्तरगमनाय ॥५३॥



पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति शशिमुखी)

शशि-अए ! अज्ज निउञ्जे कल्लाणाहिनिवेसाणं को वुत्तन्तो त्ति ण जाणीअदि । ता देईं अणु सरिअ जाणिस्सं (पुरतोऽवलोक्य) अए कधं एसा णिद्दा-मुउलिद - लोअणा लहु लहु इध जेव्व आअच्छदि ॥ १ ॥

अयेऽद्य निकुञ्जे कल्याणाभिनिवेशयोः कोवृत्तान्त इति न ज्ञायते तत् देवीमनुसृत्य ज्ञास्यामि अये कथमेषा निद्रा मुकलित लोचना लघु लघु इहैवागच्छात् ॥ १ ॥

(संस्कृतमाश्रित्य)

स्वैरं स्वैरं कथमपि दृशौ मन्दनिष्पन्दतारे
विन्यस्यन्ती शिथिलितभुजद्वन्द्वसन्नामितांसा ।
मन्दन्यासस्खलितचरणा व्यस्तमञ्जीरघोषा
देवी निद्राकुलतरतनुर्मोदमाविष्करोति ॥ २ ॥

(सुखसिन्धुडारागेण)

दरमुकुलारुणलोचनमानन इह गतकान्तिविकाशे ।
कमलमिवारुणमुषसि विधावनुविम्बितमम्बुसकाशे ॥
किमिदमियं प्रविशन्ती ।
भजति मनो मम रतिविरताविव बनिता कपि चलन्ती
॥ध्रु०॥

शिथिलभुजा-मृदु-रणित-कनकमणि-कङ्कणमिदमनुवारम् ।
विसकलपादनिबेश-निवारित-नूपुर-ललित-विहारम् ।
गजपतिरुद्रनराधिपहृदये मुदमिदमातनुतेति ।
रामानन्दरायकविभणितं विलसति रसिकजनेऽति ॥ ३ ॥

(ततः प्रविशति यथोक्तवेशा मदनिका)

स्वैरं स्वैरं मन्दं मन्दं यथा स्यात्तथा । मन्दं अल्पं शिथिलितेन शिथिलीभूतेन भुजद्वन्द्वेन सन्नामितोऽसौ यस्याः सा ॥२

दरं ईषन्मुद्रितं । उषसि प्रातःकाले जलनिकटस्थचन्द्रे प्रतिबिम्बितपद्मामिव । इदं किमाश्चर्य्यं भजति आनन्दयति ॥३

(चक्षुषी विमृज्य पुरतोऽवलोक्य)

मद—अहो रमणीयता वसन्तयामिनीपरिणामस्य तथाहि ॥४॥

इतो मन्दं मन्दं सरसिजवनी–वातलहरी
ततश्चूतास्वादप्रमुदितपिकानां कलकलः ।
क्वचित्फुल्लां वल्लीमनु मधुकराणां स्वरकथा
कुतश्चित् कोकानां मृदुमधुरमानन्दलपितम् ॥ ५ ॥

(द्वित्राणि पदानि परिक्रम्य आनन्दमभिनीय)

उद्दाम-स्मर-चातुरी-परिचयादन्योऽन्य रागादिमां
रात्रिं जागरितानि सद्मनि युवद्वन्द्वानि यच्चेरते ।
तत्तेषां श्वसितानिलेन तुलनामासादयिष्यन्निव
प्रोन्मीलत्कमलावलीषु वलते श्रीखण्डवीथीमरुत् ॥६॥

(पुरतोऽवलोक्य सविस्मयम्)

चकितचकितं क्वापि क्वापि प्रमोदनिरन्तरं
क्वचन वनिताकुण्ठोत्कण्ठं निधाय विलोचने ।
कलयति तथावस्थामेषा रथाङ्ग-कुटुम्बिनी
भवति न यया चान्तेवासी विदग्धवधूजनः ॥ ७ ॥

रात्रिमिति अविच्छेदे द्वितीया ॥ ६ ॥

रथाङ्गकुटुम्बिनी चक्रवाकी । ययावस्थाया विदग्धवधूजनः अन्तेवासी शिष्यो न भवतीति न अपि तु भवत्येवेत्यर्थः । छात्रान्तेवासिनौ शिष्यो इत्यमरः ॥ ७ ॥

(क्षणमन्यतो गत्वा साश्चर्यम्)

अये ! अतिरमणीयमिदं वर्त्तते ।

तथाहि उन्मीलत्-कमलोदरे मधुभरे दृष्ट्वानुविम्बं निजं
मन्वाना दयितं कथञ्चिदधुना नोत्कण्ठया धावति ।
उत्कण्ठोपनतं पुनः सहचरं दृष्ट्वा विलज्जा मुहु-
र्न स्थातुं न च गन्तुमत्र चतुरा भृङ्गी चिरं भ्राम्यति॥८

शशि—इयमतिप्राभातिक-रामणीयकाहृतचित्ततया न माम-लोकयति । तदुपसृत्य वन्दे [इत्युपसृत्य] देवि वन्द्यसे ॥ ९ ॥

मद—कथं शशिमुखि वत्से मे चिरमन्यचित्ततया नाव-धारितासि ॥ १० ॥

शशि—देवि ? किथं निद्राकुलामिव भगवतीं तर्कयामि ॥११

मद—वत्से ? इवेति कथं तथैव ॥१२॥

शशि—अथ कथमिव ॥

मद—राधामाधवयोरद्य निकुञ्जमधितिष्ठितोः ।
तत्तत् कुतुकितालोकान्निशेयमतिवाहिता ॥१३॥

शशि—अथ कीदृशस्तत्रत्यो वृत्तान्तः ? ॥१४॥



इयं देवी । उपसृत्य निकटं गत्वा ॥ ९ ॥
अतिवाहिता लङ्घिता ॥ १३ ॥

मद—शृणु (नयने प्रमृज्य) वत्से ? जानासि निकुञ्जप्रवेशावधि ॥ १५ ॥

शशि—अथ किं ॥१६॥

मद—तदनन्तरं,

यस्तम्भो मुरविद्विषः समभवत्तेनापि तस्या मनो–
माध्यस्थ्यं परिशंकते भयमनोजन्मत्रपानिर्भरम् ।
कामेषुव्रजपक्ष्मवातविसरप्राप्तोदयो न क्षणा-
दश्वासं हरिणीदृशो वितनुते तस्य प्रकम्पो यदि ॥१७

शशि—प्रियं मे प्रियं कृतार्थाऽस्मि ॥१८॥

मद—इतः परमपि सुहृदां कृतार्थता ॥२६॥

शशि—अपि नाम दृष्टं देव्या अन्यदपि ॥२०॥

मद—समस्तमेव ॥२१॥

शशि—ततस्ततः ॥२२॥

मद—वत्से ?

साशङ्कं समनो-भव-प्रहसितं सापत्रपं सस्मयं
सासूयं समनोहरात्मकपदं सप्रेम सोत्कण्ठितम् ।

अथ किम् ॥ १६ ॥

मध्यस्थं स्तम्भेन राधायाः ताटस्थ्यं । शङ्कते तदा इत्युह्यम् । मनोजन्मः कन्दर्पः । विसरः समूहः, तस्य श्रीकृष्णस्य ॥१७

देव्या त्वया । सस्मयं सगर्व्वं । तत् बिहरणं । येन रतेन ॥ २३ .

राधाया मधुसूदनस्य च तदा कुञ्जे तदासीद्रतं
येनासीन्मदनोपि विस्मयरसस्निग्धान्तरो निर्भरम् ॥२३

[आहिररागेण]

मृदुमञ्जीररवानुगतं गतमनया शयनसमीपम् ।
मधुरिपुणापि पदानि कियन्त्यपि चलितं कियदनुरूपम् ॥
शशिमुखि किं तव वत कथयामि ।
राधामाधवकेलिभरादहमद्भुतमाकलयामि ॥ ध्रु० ॥
मिलितमिदं किल तनुयुगलं पुनरपि न कश्चन भेदम् ।
विषमशराशुग-कीलितमिव सखि गलितचिरन्तनखेदम् ॥
नखररदावलि-खण्डितमपि गुरुनिःश्वसितायतभीतम् ।
रुद्रगजाधिपमुदमातनुतां रामानन्दरायसुगीतम् ॥२४

शशि—देवि ! असम्बद्धमिवेदं प्रतिभाति माम् ॥२५॥
मद—कथमिव ! ॥ २६ ॥
शशि—तयोः कथमीदृशं सौरतकौशलं जातम् ॥२७॥
मद–अयि सरले !

उपदिशति गुरुर्गुरुप्रयत्ना-
दपि च कालवशात् प्रयाति पाकम् ।

कियन्ति पदानि वाप्य । विषमशराशुगः कन्दर्पबाणः, कीलितं बद्धं बद्धे कीलितसंयतावित्यमरः । गलितो दूरीभूत-श्चिरन्तनः खेदो यत्र तत् तनुयुगलं क्रियाविशेषणं वा ॥२४॥

इति किल नियताः समस्तविद्याः
सुरतकलाः स्वत एव सम्भवन्ति ॥२८॥
अत्रान्तरे सुरतकेलिकलासु तासु
प्रायेण शिक्षित इवैष शशी चिरेण ।
योग्यां ततः किमपि कर्त्तुमिव प्रकामं
संसेवते स्म चरमां दिशमादरेण ॥२९॥

शशि—सम्प्रति च कल्याणिनोः,
अभिमत-सुरत-प्रमोद-लक्ष्मी-
परिचय-निर्वृतिमायतोऽचिरेण ।
नखपददशनाङ्कचारुभूषा-
ललिततमं वपुरीक्षितुं मनो ने ॥३०॥

(ततः प्रविशति सत्वरा राधिका कतिचिद्दूरे कृष्णश्च)

राधा—(पुरतोऽवलोक्य) आपसन्नाइं दिशां मुहाइं, ता कधं ओवारिदसरीरा गमिस्सम् (सत्वरं द्वित्राणि पदानि परिक्रम्य वलितग्रीवमवलोकते) ॥३१॥

कृष्णः—(क्षणं निर्व्वर्ण्य) अहो भयमन्मथसम्वलना मृगाक्षी ।
द्वित्राण्येव पदानि गच्छति जवाद्द्वित्राणि मन्दं पुन-
स्त्रासोत्कम्पमथापि पश्यति दिशः साकूतमेताः पुनः ।

असम्बन्धं असङ्गतम् ॥२५॥ अन्तरे अवसरे ॥२६॥
आ ईषत् प्रसन्नानि दिशां मुखानि तत्कथमपवारितशरीरा गमिष्यामि ॥३१॥

योन स्यादपि गोचरे नयनयोर्नेदिष्टमेतं जनं
सम्प्रत्येति पदे पदे व्यवहितं मामन्तिकेऽपि प्रिया ॥३२

राधा—(पुनः सत्वरं परिक्रामति) ॥३३॥

मद—वत्से पश्य पश्य पुरतो राधिकां कतिचिद्दूरे माधवञ्च।
इयं हि--
न व्यालादपि सम्बिभेति पुरतः स्थाणोर्यथा दूरतो
नोद्विग्ना करिगर्जितादपि यथा काकावलीनिस्वनात्।
नैवेयं तिमिरेऽपि मुह्यतितरां कामं प्रकाशे यथा
तन्मन्ये विरहेऽपि नैव विधुरा कान्तस्य योगे यथा ॥३४

ललितरागेण—

अभिमतगाढ़मनोरथ–समुचितरतिपति–समरविशेषे।
विजयपराजय–परिचयविमुषित–चेतसि वलदभिलाषे॥
लुलितमनोहरदेहा।
कथयति परिचयमियमतिनिपुणं मृदुपदकमल–
लवेहा ॥ध्रु॥
कुसुमशरासनशरनिकरध्वनि–मणितमनोहरघोषे।
गुणपरिपाटितया परिकल्पित–नखदशनक्षतदोषे॥

एतामदधिकरणीभूता दिशः। अन्तिके निकटे स्थितमपि मां व्यवहितं जानाति। प्रिया राधा ॥३२॥

गजपतिरुद्रनराधिपविदिते रसिकजनाहिततोषे
रामानन्दरायकविभणिते हृदयं कुरुत विदोषे ॥३५॥
तदतिभयकातरेयं वत्सा । तत् उपसृत्य सम्भाव-
थामस्तावदेनाम् (इति उपसृत्य) वत्से स्वागतं ते ॥३६

राधा—(ससम्भ्रममवलोक्य) अत्र कधं एषा देई (सलज्जं
वन्दते) ॥३७॥

(नेपथ्ये कलकलः) अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् ।
(सर्व्वाः श्रुतिमभिनयन्ति ॥३८॥ पुनर्नेपथ्ये)
शृङ्गाभ्याञ्च खुराञ्चलेन च वलादेष क्षमामुल्लिखन्
कल्पान्तस्तनयित्नु-गर्जितघनध्वानैर्दिशो दारयन् ।
उल्कार्च्चिः प्रतिमल्लमक्षियुगलं क्रोधादिवान्दोलय-
न्नेष व्यापदि मज्जयन् व्रजमभूद्दैवादरिष्टोऽग्रतः ॥
(सर्व्वे निकुञ्जोदरे आत्मानमपवार्य्य पश्यन्ति) ॥३९॥

भणितं रतिकूजितम् । विदोषे निर्दोषे ॥३५॥
अये कथमेषा देवीति ॥३७॥
अब्रह्मण्यमवध्योक्तौ ॥३८॥
क्षमां भूमिम् ।
अर्च्चिः शिखा । प्रतिमल्लं सदृशम् । व्यापदि बिशिष्टविपत्तौ ॥३९॥

कृष्णः—(साटोपमुपसर्पन्) अभयं घोषनिवासिनाम् ।

(सगर्व्वं वाहुमुद्यम्य) ॥४०॥

दृप्यद्दानवशीर्णशैलवलयक्षौणीमहालम्बने
वैरिव्याकुलशक्रशान्तिकमखप्रोद्दामयूपेऽपि च ।
अस्मिन् कृष्णभुजेऽपि जाग्रति भयं नित्यं तदेकश्रयान्
घोषस्थानपि संस्पृशेदहह किं प्राणैर्मम क्रीड़ति ॥

(इति साटोपं परिक्रामति) ॥४१॥

(नेपथ्ये) भोः कष्टं कष्टम् ।

याभ्यां गिरिणामपि शृङ्गवत्त्वं
सोढुं न शक्तेन विदारितास्ते ।
तयोरनेनोत्पलकोमलाङ्गो
लक्ष्यीकृतो वालतनुर्मुकुन्दः ॥४२॥

(मदनिका विलोक्य सास्रम्)

अद्य क्षौणि सहस्व भारमतुलं देवा जयाशा कुतः
श्रीदेवि व्रतमाचर व्रजजनाः क्वानन्दवार्त्तापि वः ।

गिरीणां शृङ्गवत्वम् ।

नु वितर्के । सोढूं अशक्तेन अनेन याभ्यां ते गिरयो विदारताः । नयोः शृङ्गयोः । अनेन अरिष्टेन ॥४२॥

मातर्देवकि किं भविष्यसि गता नन्दादयो राधिके
शून्यं ते जगदद्य जातमधुना हा हा हताः स्मो वयम् ॥४३

राधा—(श्रुतिमभिनीय मातङ्क) हद्धि हद्धि मह मन्द-भाइणीए एआरिसं दुद्दे्व्व विलसिदं जादम् ॥४४॥

शशि—सखि! समाश्वसिहि समाश्वसिहि एष खलु मुकुन्दः ॥४५

(नेपथ्ये)

यत्रोन्मीलति मीलितं त्रिभुवनं यत्रोन्नमत्यानतं
यस्मिन् भ्राम्यति न भ्रमन्ति वियति प्रायेण वाता अपि।
क्षिप्त्वा कन्दुकलीलया तमधुना वृन्दावनाद् दूरतो
हत्वारिष्टमरिष्टमेतदकरोत् श्रीमान् मुकुन्दो जगत् ॥४६॥

(ततः प्रविशति कृष्णः सर्व्वाः सस्पृहमालोकयन्ति) ॥४७

मद—अहो रामणीयकं जयश्रीभूषणस्य वत्सस्य तथा हि—

विस्रस्तालकवल्लरीपरिमिलत्स्वेदोदविन्दूत्कर—
व्यालिप्तालिकचन्दनः क्रमगलत्केकिच्छदोत्तंसकः।

देवकि यशोदे। द्वे नाम्नी नन्दभार्य्यायाः यशोदा देवकीतिचेति वचनात् ॥४३॥

हा धिक् मम मन्दभागिन्या एतादृशं दुर्दैवविलसितं जातम् ।४४॥

यत्र यस्मिन् अरिष्टे प्रकाशमाने सति त्रिभुवनं प्रकाशरहितम्। रिष्टं क्षेमशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाशुभे इत्यमरः ॥४६॥

पादक्षेपसमुच्छलत्क्षितिरजो रम्याङ्गरागश्चिरा-
दानन्दं वितनोत्ययं नयनयोराविर्भवन्माधवः ॥४८॥

(उपसृत्य) दिष्ट्या दृष्टोऽसि वत्स ! जयश्रीस्वयम्बरा-
लिङ्गितः ॥४९॥

कृष्णः—(दृष्ट्वा सहर्षं) देवि स्वागतं ते ॥५०॥

मद—स्वागतमधुना वत्सेन जयश्रीभूषणेन दृष्टेन तद्वत्स !
क्षणमिह वकुलपादपोपवीथ्यां विश्राम्यताम् ॥५१

कृष्णः—यदभिरुचितं देव्यै (इत्युपविशति) ॥५२॥

मद—(सस्नेहमङ्गं स्पृशति) वत्स ! कृतदुष्करकर्म्मणः कि-
मपि पारितोषिकं दित्सामि ॥५३॥

कृष्णः—यदभिरुचितं देव्यै ॥५४॥

मद—(निष्क्रम्य राधामादाय प्रविश्य) वत्स !
नवाभिसङ्गविधुरां त्रासोन्मीलितलोचनाम् ।
मधुरालोकनेनैनां सम्भावय चिरादिव ॥५५॥

कृष्णः—(सस्पृहमालोकयति) ॥५६॥

मद—वत्से !
क्रूरसङ्गरपरिश्रमोल्लसत्स्वेदविन्दुनिकरैः करम्बितम् ।
अञ्चलेन निजवाससः प्रियं बीजय प्रियगिराभिनन्द्य च ॥५७

अलिकं ललाटम् ॥४८॥
दित्सामि दातुमिच्छामि ॥५३॥

(राधा सस्पृहं बीजयति)

मद—इतःपरं किन्ते प्रियं सम्पादयामि ? ॥५६॥

कृष्णः—देवि ! इतःपरं किमपि प्रियमस्ति ?

पञ्चेषोर्विशिखावलीभिरभितो निस्तद्यमाणेन चे-
दानन्दैकनिदानमेणनयना प्राप्ता प्रसादात्तव ।
भूयः सेयमलम्भि काचन दृशोः पीयूषधारा मया
किं वात: परमस्ति देवि भुवने किञ्चित् प्रियं मादृशाम्
॥६०॥

मङ्गलगुञ्जरीरागेण–
परिणत–शारदशशधरवदना ।
मिलिता पाणितले गुरुमदना ॥
देवि किमिह परमस्ति मदिष्टम् ।
बहुतरसुकृतफलितमनुदिष्टम् ॥ध्रु॥
पिकविधुमधु–मधुपावलि चरितम् ।
रचयति मामधुना सुखभरितम् ॥
प्रणयतु रुद्रनृपे सुखममृतम् ।
रामानन्दभणित हरिरमितम् ॥६१॥
तथापीदमस्तु—

अनु लक्षीकृत्य ॥६१॥

श्रद्धाबद्धमतिर्मम प्रतिदिनं गोपाललीलस्य यः
संसेवेत रहस्यमेतदतुलं लीलामृतं लोलधीः ।
तस्मिन् मद्‌गतमानसे किल कृपादृष्ट्या भवत्या सदा
भाव्यं येन निजेप्सितां ब्रजबने सिद्धिं समाप्नोति सः ॥६२

मद—तथास्तु ॥६३॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्व्वे) ॥६४॥

इति श्रीजगन्नाथवल्लभनाटके श्रीराधासङ्गमो नाम पञ्चमोऽङ्कः॥५॥

इति श्रीरामानन्दरायकबिसार्व्वभौमबिरचितं
श्रीजगन्नाथवल्लभनाटकं समाप्तम्

—※-:०※०:-※—

लोलधीः सतृष्णबुद्धिः । लोलश्चलसतृष्णयोरित्यमरः । येन कृपादृष्टेन ॥६२॥

—०※०—:※:—०※०—



❀ श्रीगौरहरिर्जयति ❀

❀ श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक का अनुवाद ❀

❀ —— ❀ —— ❀

जिस में निषाद आदि सातों स्वरों से युक्त बीणा, बेणु तथा मृदङ्गादि बाद्यों के सहयोग से उत्कृष्ट सङ्गीत होरहा है, जो त्रिभङ्ग तनुलता में आलम्बित मनोहर हास्य से परिबर्द्धित है एवं जो सखिओं की करताल-ध्वनि तथा नूपुरों की झनकार से उज्वल हो रहा है एसा मुरदमन श्रीकृष्ण का नृत्य त्रिभुवन के आनन्द बर्द्धन करें ॥ १ ॥

और भी-क्या यह मन्दहास्य है ? नहीं नहीं यह शीतल-किरण वाला चन्द्रमा है, यह चञ्चल-नेत्र नहीं है यह तो भ्रमरों से युक्त कमल है, यह कर्ण नहीं है जगज्जय के लिये कामदेब के धनुष के प्रत्यंचा (गुण) है, इस प्रकार आनन्द-वेग से मुग्ध-गोपाङ्गनाओं का श्रीकृष्ण-दर्शन जनित दृगञ्चल उत्पन्न भ्रम आप लोगों के शत शत शुभ विधान करें ।।२।।

और भी-कुरङ्गनयना गोपाङ्गनाओं के अनङ्गसागर को उमगाता हुआ, योगियों के चित्त-रूपी कुमुदबन को खिलाता हुआ राक्षस-रूप कोककुल (चक्रबाल समूह) को एकान्तभाब से शोकाकुल करता हुआ मधुनाशन श्रीकृष्ण का मुख-शशी तुम सब का आनन्द बिस्तार करें ॥ ३॥

जिन के मस्तक पर निबद्ध मयूरपुच्छ समूह सुन्दर मलयानिल के मन्द मन्द संचारण से सञ्चलित हो रहा है, कन्दर्प-बाण से बिन्धि हुई क्षुब्धचित्त ब्रजसुन्दरी गण अपने कुटिल चञ्चल नयनाञ्चल के द्वारा जिन को कौतुकान्वित कर रही

हैं, जो चन्द्रमुखी गोपरमणियों के बदन-दर्शन में लोलुप हैं, जिनका चित्त कन्दर्पकेलि रस में अत्यन्त आसक्त है, जिन की ग्रीबा रस वश ईशत् कम्पित है एवं जो गजपति प्रतापरुद्र महाराज के हृदय में बिराजमान हैं उन मधुसूदन श्रीहरि का भजन करो। श्रीरामानन्दराय इस सुचारु सरस सङ्गीत पूर्ण नाटक की रचना करते हैं ।।४।।

अपने इष्टदेब श्रीकृष्णचन्द्र की मङ्गलस्तुति पाठ के ऊपरान्त सूत्रधार बोलता है-बस यहाँ तक सुन्दर है अधिक बिस्तार का प्रयोजन नहीं है। प्रिये! आओ आओ ।। ५ ।।

[नटी का प्रवेश]

नटी—आर्य ! मैं उपस्थित हूँ, प्रणाम करती हूँ। चरण पतित अपनी किङ्करी को अवलोकन प्रसादों से प्रसन्न हृदय कराना पति ही परम प्रमाण रूप है ।।६।।

सूत्रधार-(सहर्ष) प्रिये ! तुम चिरकाल पर्य्यन्त बिदग्धोचित वेश के द्वारा यौवनबिलास अनुभब करो ।

नटी—प्रभो ! आपने किस प्रयोजन से दासी को आह्वान किया है ।।७।।

सूत्र—प्रिये ! बड़े आनन्द की बात है क्या तुम नहीं जानती हो?

नटी—नहीं, आप बिस्तार पूर्वक कहिये, उसको सुनने के लिये मेरा चित्त बड़ा उत्सुक हो रहा है ।।८।।

सूत्र—प्रिये सुनो, आज बसन्त दिबस का अबसर प्राप्त है, जिस में तरुण सूर्य से बिरहित दक्षिण-दिशा रूपी रमणि के स्तन-कलस सदृश मलयाचल के उपरिभा‑ में अबलम्बित बेणी की भाँति सर्प समूह के संसग प्राप्त समीरण के भंस्पर्श से जो समस्त बिरहिणिजन मू-

र्च्छित होकर पड़ी हुई हैं उन के जीवनोपाय स्वरूप सखियों का आश्वासमय बचन चारों ओर विस्तार होरहा है, निर्मल गगन रूप कानन में दीप्तिशील, नव प्रकाशित, तुलनारहित मुक्ताफल की भाँति प्रकाशित ताराकलिकाओं के मध्यवर्त्ती परिपूर्ण चन्द्रमा रूप बिकसित श्वेतपुष्प मानो क्रोध से देखने बाली बिरहिणीजन के चञ्चल लोचनाञ्चल रूपिणी लता के अग्रभाग में शोभित होरहा है।

इस प्रकार बसन्तबासर की सन्ध्या में महाराज प्रतापरुद्र, जिनकी निरुपम कान्ति दर्शन से लक्ष्मीपति लुब्ध-हृदय हो कर उन के चित्तरूप क्षीरसागर में निवास कर रहे हैं, जो विभाबादिबर्ग से परिणत रसरूप रसाल (आम्र) मुकुल आस्वादन में बिदग्ध (रसिक) भ्रमर हैं, जिनका हृदय श्रीराधा के कंठहार-सहचर श्रीकृष्ण के गुण रूप मुक्ताफल से भूषित है, अधिकं तु जिन के नाम का श्रवण कर सिकन्दर नामक यबनराज ने भयचित्त से पर्व्वत गव्हर में प्रवेश किया है, करेल देशिय नरपाल अपने परिबारवर्ग को साश्रु नेत्र से देखने लगा है, जिनके नाम श्रवण मात्र से ही गुज्जरदेश के राजा अपनी नगरी को जीर्ण अरण्य की भाँति मानने लगता है तथा गौड़देशीय क्षितिपाल गण अपने को प्रबल वायु (आंधी) वेग से समुद्र स्थित घूर्णायमान नोकारूढ़ की भाँति बोध करने लगते हैं, जिन की कीर्तिराशि कैलाश पर्वत के कायव्यूह के समान, हिमालय के निर्य्यासतथ्य के समान, क्षीरसागर के फेण के समान, शरद्कालीन मेघमाला के समान तथा गंगाजल के समान प्रभावशाली होकर जगत् को निर्मल

बनाती है, जिन के दानोत्सर्ग जल से निर्म्मित नदियों का सङ्ग लाभ कर हर्षयुक्त सागर तरलित हो कर उच्चध्वनि छल से स्तव करता रहता है, जिन के नित्य अनुष्ठित यज्ञों के द्वारा देवता सकल बद्ध चित्त हो कर प्रतिमा छल से क्षण काल के लिये भी प्राङ्गन त्याग नहीं करते हैं, जो विपक्ष-राजाओं के कालाग्नि रुद्र (प्रलयकालीन रुद्र) स्वरूप हैं उन प्रताप-रुद्र महाराज ने हम को हरिचरणाश्रित किसी एक अभिनव प्रबन्ध का अभिनय करने का आदेश दिया है ॥६-१३॥

हे प्रिये ! उन्होंने ऐसा कहा है कि -हे नट श्रेष्ठ ! मधुनाशन श्रीकृष्ण के चरण-संसर्गि लीला-विलासों से युक्त, उन उन नाना सद्गुणों से शोभित, सामाजिक गण के चित्त आमोद कारी ऐसा एक अभिनय प्रवन्ध का अभिनय करो जो कि किसी पुरातन प्रबन्ध का आदर्श लेकर प्रतिच्छाया के समान न हों ॥ १४॥

नटी—कहने को आज्ञा दीजिये।

नट—प्रिये ! मैं किस प्रकार सम्पूर्ण विद्याओं के निधि रूप उन का आराधन करूँ क्यों कि इस प्रकार कार्य्य सम्पादन वासना में वाक्पति वृहस्पति भी कर्त्तव्य बिमूढ़ हो जाता है (क्षणमात्र विचार कर के) आहा प्रिये ! स्मरण हुआ ॥१५॥

नटी—अच्छा कहो तो वह किस प्रकार है? ॥१६॥

सूत्र—प्रिये ! धैर्य-गाम्भीर्य्य-मर्य्यादा-तथा प्रसादादि गुणों के रत्नाकर (समुद्र) समान, वृहस्पति प्रणीत नीति समूह से युक्त मन्त्रणा प्रभाव से सरल-गुणवान क्षितीश्वर प्रताप-रुद्र जिनके वशीभूत हुए हैं, भवानन्द राय के पुत्र हरिचरण-परायण कबि श्रेष्ठ उन रामानन्द राय ने भगवद्गुणों से

अलङ्कृत जगन्नाथ बल्लभ नामक नाटक जो महाराज प्रतापरुद्र के प्रिय एवं रामानन्द सङ्गीत नाटक करके प्रसिद्ध है उसका निर्म्माण कर हम को प्रदान किया है। अतः उस का ही अभिनय करूँगा ॥१७॥

और भी कबिवर रामानन्द राय ने बिनय पूर्वक ऐसा कहा है कि-यद्यपि मुझ से निर्म्मित इस प्रवन्ध में गुण का लेश मात्र नहीं है तो भी मधुनाशन श्रीकृष्ण चरण-कमल संसर्गि गुण-कीर्त्तन के मौजूद रहने के कारण सहृदय (सामाजिक) वर्ग के हृदय में प्रचुर आनन्द-हेतु होगा, इसलिये मेरा यह प्रयास बिफल नहीं होगा ॥ १८॥

अतः नट समूह को उपयुक्त वेश धारण के लिये आदेश करो।

नटी—(संस्कृत में) स्वामि! जो आज्ञा (सम्मुख में देखकर) देखो देखो ॥ १९॥

प्रदोषकाल में पुष्पों की धूलि से धूसरित अंग बाला भ्रमर प्रति कमल के मधुपान से अत्यन्त मत्त होकर मन्द मलयानिल के सञ्चरण से मृदु मृदु तरङ्गायित सरोवर मध्यवर्ति कमल कोष के अभ्यन्तर में अंग समूह का संयत करके शयन किया हुआ है।

सूत्र— (सहर्ष) प्रिये! अच्छा अच्छा, तुम ने हमारे चित्त को कौतूहल सागर के बिवर्त्त (घूर्णा) में निक्षेप किया है। क्यों कि शत शत गोपाङ्गनाओं के अधर मधु-पान पूर्वक अत्यन्त क्रीडा-श्रम से अलसाङ्ग, किसी प्रौढ़-गोप वधू के स्तन रूप उपधान (तकीया) से युक्त हृदय-पलंग में शयन

कारी पीताम्वर नारायण हमारे स्मृति पथ में आरूढ़ हुए हैं। ॥ २० ॥

[नेपथ्य में]

वत्तीस महालक्षण से युक्त देव देवेश्वर श्रीहरि गोप-बालकों को साथ में लेकर यमुनातीर-वर्त्ति कानन में गमन कर रहे हैं ॥ २१ ॥

[केदारराग] इन युवतियों के मनोहर बेश धारी मुर-रिपु का अवलोकन करो। मानो शरत्कालीन चन्द्रमा अनु-पम रूप धारण कर भूतल में अवतीर्ण हुआ है। आहा! इन के मस्तक स्थित चूड़ा का पल्लवगुच्छ के साथ मयूरपुच्छ समूह सुमन्द पवन के मन्द मन्द सञ्चालन से ईषत् कम्पाय-मान हो रहे हैं, इन के ललाट में तिलक इस प्रकार उज्वल प्राप्त हो रहा है मानो उस से मरकतमणि निर्म्मित दर्पण में प्रतिबिम्वित पूर्णचन्द्रमा विडम्वित हो रहा है, और इन की लीलावश आन्दोलित मणिकुण्डल की छटा मुखमण्डल की शोभा बिस्तार कर रही है, एवं वे हेला पूर्वक मधुर-भाव से इस प्रकार लोचन चञ्चल कर रहे हैं कि जिस से गोपवधूओं का लोभोत्पन्न हो रहा है। रानानन्दराय कवि के द्वारा बर्णित श्रीमधुरिपु का यह मधुररूप, गजपति प्रतापरुद्र महाराज के चित्त में निरन्तर आनन्द बिस्तार करें ॥ २२ ॥

सूत्र— [सचकित] प्रिये ! हमारे कनिष्ठ भ्राता श्रीकृष्ण के वृन्दावन गमन का आवेदन कर रहा है। अतः हम सब नेप-थ्य समृद्धि के लिये गमन करें। (एसा कथोपकथन के बाद दोनों का प्रस्थान) ॥२३॥

प्रस्तावना:— अर्थात् वक्तव्य प्रस्ताव का आरम्भ—

[अनन्तर निर्दिष्ट स्थान में श्रीकृष्ण का प्रवेश]

कृष्ण--सखे रतिकन्दल ! (मधुमङ्गल) देखो देखो बृन्दाबन की कैसी आश्चर्य रमणीयता ? चार-ओर वृक्ष-लता समूह बसन्त ऋतु के समागम से प्रमुदित हो कर अपने अभिनव पल्लव युक्त चञ्चल शाखा रूप स्पर्श के द्वारा भ्रमर आलिङ्गित विकसित कुसुम रूप अञ्जन युक्त लोचनों से परस्पर मानो अबलोकन एवं वायुबेग से चञ्चल होकर मदमत्त कोकिल के निनद छल से परस्पर रसालाप तथा कलिका उद्गम छल से रोमाञ्चित हो कर अत्यन्त शोभा बिस्तार कर रहे हैं ॥२४-२५॥

बिदू—भो बयस्य ! तुम्हारे लिये यह बृन्दाबन रमणीय हो रहा है, परन्तु हमारे लिये जहाँ कहीं शिखरिणी, कहीं रसाला, कहीं सुगन्धीघृत कहीं बा शाल्यन्न मौजूद हैं इस प्रकार भोजनालय प्रियकर है ॥२७॥

कृष्ण—सखे ! अवलोकन करो, हमारा यह बृन्दावन पृथिवी का सार रूप है। जो कि तुम्हारे खेला-युक्त अदृष्टचर रूप को देख कर मानो विकशित कुसुम समूह की सुषमा छल से बहु क्षण पर्य्यन्त उच्चहास कर रहा है एवं तुन्हारे समागम से सकौतुक हो कर मृदु मारुतकम्पित पल्लव रूप कर द्वारा सर्वदा मानो नृत्य करने का आदेश कर रहा है। रामानन्दराय के द्वारा बिरचित यह सङ्गीत जो कि गजपति प्रतापरुद्र का मनोहर है वह रसिक जन का निरतिशय सुख प्रदान करें ॥ २८ ॥

सखे ! इन कोकिलों का कैसा सुमधुर रब है ॥ २६ ॥

बिदू—भो बयस्य ! तुम्हारा वंशीरब इस से मधुर है एवं हमारा कण्ठरब वंशीरब से भी अति मनोहर है। अतः तुम

वंशीबादन करो मैं भी कण्ठध्वनि करता हूँ ॥ ३० ॥
श्रीकृष्ण—जैसी तुम्हारी अभिरुचि। (एसा कह कर वंशी बजाने लगे) ॥३१॥
बिदू—तुम्हारा वंशीरव सुना है अब मेरा कण्ठरब एकबार सुनो। (ऐसा कह कर विकट मुख कर कठोर चित्कार) ॥३२॥ (वृक्षाग्रभाग में दृष्टि निक्षेप कर) सखे देखो देखो, हमारी जीत हुई। जो दासीपुत्र कोकिल गण तुम्हारी वंशीध्वनि से अपने को पराजित मान कर छिपे हुये थे बे सब हमारे कण्ठ-नाद को श्रवणकर कौन कहाँ पलायन कर गये। अतः हे सखे! तुम्हारे गर्व का कारण नहीं रहा ॥ ३३ ॥
कृष्ण—सखे! देखो देखो, किसी निर्दयव्यक्ति ने इन सब अशोक-पल्लवों को भग्न किया है, जिस को देख कर मेरे हृदय व्यथित हो रहा है ॥ ३४ ॥
बिदू—वयस्य! मैंने सुना है कि दासीपुत्री गोपिकायें यहाँ आ-कर पुष्पचयन करती हैं, (सपरिहास) हाँ मैंने जान लिया कि इसी कारण तुम बृन्दाबन नहीं त्यागते हो ॥३५॥
(नेपथ्य में) वृन्दाबन में बिहरण-शील मधुसूदन की मुरलीध्वनि का कर्णाञ्जलि से पान कर श्रीराधा का कन्दर्प जाग्रत हो गया है। वह इसलिये गाढ़ लज्जा का त्याग कर कौतुहल बश सखी-मण्डली में प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

श्रीराधिका आज क्षण क्षण में कामवाधा से आक्रान्ता हो कर मृदु पवन से चञ्चलायमान कमल की भाँति चारों ओर दृष्टि-पात करती हुई मृदु मन्थर मत्त गजराज गति से क्रीड़ा कानन में प्रवेश कर रही है। श्रीरामानन्दराय बिरचित यह सङ्गीत गजपति प्रताप-रुद्र के चित्त को आनन्दित करें ॥ ३७ ॥

बिदू—(कर्ण लगाकर) अहे! मैंने भली भाँति जान ली।
कृष्ण—क्या जाना ?
बिदू—हमें क्या पूछते हो।
(सखीगण के साथ श्री राधा, मदनिका एवं बनदेवी प्रवेश करती हैं)

बिदू—(आगे देख कर) बयस्य! देखो देखो, किसी इन्द्रजालिक (मायावी) ने ये समस्त स्वर्ण-पुत्तलियाँ छोड़ दी हैं, जो कि इधर आरही हैं। अतः यहाँ से एक लेकर पलायन करूँ। सखे! मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ, एक की प्राप्ति से कृतार्थ हो जाऊँगा। (एसा कह कर धरने के लिये चलने लगा)
कृष्ण—धिक् मूर्ख ! यह कनक-पूत्तलिका समूह नहीं है परन्तु गोपीसमूह है।

बिदू—(स्थिर हो कर हास्य वदन से) बयस्य! अच्छा निश्चय किया है, तुम्हारा बृन्दाबन आना सफल हुआ।
कृष्ण—अरे मूर्ख! हमारा वृन्दाबन आने में क्या फल हुआ है ? ॥ ४१ ॥

बिदू—सखे ! इन समस्त दासी–पुत्रि गोपिकाओं से ही इस बृन्दाबन के नवीन पल्लव समूह प्रतिपालित हो रहे हैं एसा ही कह रहा हूँ ॥ ४२ ॥

राधा—(सन्मुख देख कर) आर्य्ये मदनिके! कहो तो वह सुकोमल नीलोत्पलकान्ति-बाला पुरुष कौन है ? जो कि सुबर्ण-राशि समान वस्त्र परिधान कर अपने कन्ध देश में ईषत् अबलम्बित वंशी का मधुर मधुर बजा रहा है॥ ४३॥
मद—सखि ! नहीं जानती हो, मैंने जिस का नाम लिय था वह वही युवा है। युवतियों के चित्त रूप विहंग इन का

वृक्ष ज्ञान से आश्रय कर रहे हैं। इन का नाम मुकुन्द है जो साक्षात् कामदेव रूप में बिराजमान हैं। जिन के नयन गोचर होने पर सुन्दरियों की नीवी उसी क्षण शिथिलता को प्राप्त हो जाती है॥ ४४॥

श्रीकृष्ण—(ईषत् अवलोकन कर मन में)
अहो ! किसी उत्तम बस्तू का शुभ क्षण में उत्पन्न होता है। जैसा कि - इस मृग-नयना के बदन समान कमल वा चन्द्रमा नहीं है तौ भी इन दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपमित नहीं हो सकता है॥ ४६॥

बिदू—सखे ! मैंने जान लिया, इन समस्त दासी-पुत्रि गोपिकाओ के द्वारा तुम उत्कण्ठित हो गये हो अतः आओ इन समस्त गोपिकाओं की दृष्टि पथ से अन्तरित हो कर शिखरिणी-रसाला पान कर अपनो आत्मा का तृप्त करें। देखो, मध्यान्ह हो गया है॥ ४७॥

श्रीकृष्ण—ठीक कह रहे हो। देखो, यह सूर्य्यदेव गगन-मण्डल के मध्यस्थल में बिराजमान होकर अपने श्रान्त घोडेओं को "अहे घोटकगण ! तुम सब इस आकाश मार्ग में भ्रमण कर क्लान्त हो गये हो, अब तुम सब की गति स्खलित हो गई है" एसा कह कर तिरस्कार करने के लिये मानो अपने किरण रूप दोनों बाहु का बिस्तार कर गगन मण्डल का परिमाण निर्द्धार कर रहे हैं॥ ४९॥

बिदू —(संकुचित नेत्र से वहुक्षण पर्य्यन्त गगन के प्रति दृष्टिपात करके) बयस्य ! मैं भी रविमण्डल का बर्णन करता हूँ। देखो, देवशिल्पी बिश्वकर्म्मा सूर्य्य-मण्डल को चक्रभ्रमि (कुन्द) में आरोहित कर घुमाय हैं उस से संस्कार

बस वह अब तक भी घूम रहा है यह मेरा अनुमान है ॥५०॥
मद—(श्रीराधिका के प्रति) सखि ! वहुक्षण पर्य्यन्त क्रीडा करने से परिश्रान्ता हो गई हो, आओ हम सब गमन करें। (सब का प्रस्थान)

इति पूर्बराग नामक प्रथमाङ्क समाप्त हुआ



❀ अथ द्वितीयाङ्क ❀



[अनन्तर मदनिका का प्रवेश]

मद—(आगे को देख कर) क्या यह अशोकमञ्जरा आ रही है ॥१
अशोक— देवि ! बन्दना करती हूँ। काय्यं-भार गृहीत व्यक्ति के समान किस चिन्ता में हो और कहाँ जा रही हो ?
मद—यह वार्त्ता अत्यन्त महती है।
अशोक—कहो तो सही।
मदनिका—वत्से ! तुम नहीं जानती हो कि आज मैं प्रियसखी राधिका को लेकर पुष्पबाटिका में गई थी।
अशोक—उस से क्या हुआ ?।
मद—उस बाटिका में अशोकबृक्ष के नीचे नन्दतनय श्रीकृष्ण बैठे थे। अनायास ही हमारी प्रियसखी राधिका के दृष्टिगोचर हुए।
अशोक—इस में क्या आश्चर्य्य है। काम के बिलास को कौन नहीं प्रकाश करता है ॥८॥
मद—इस में सन्देह क्या है ?
अशोक—आप इस बिषय में क्या कहती हो ?

मद—अयि सरले ! जानती हुई तो भी पूछती हो ।
अशोक—क्या मुकुन्द का इस समय स्मरण है ?
मद—हाँ
अशोक—आपने लज्जा से तरलचित्ता राधिका के मन का भाव कैसे जाना ? ॥१४॥
मद—सुनो, जब तक बिषम-बाण वाला कन्दर्प के हृदय में अबकाश नहीं मिलता है तब तक बाला-रमणियों का हृदय लज्जा कवच से ढका रहता है ॥१५॥
अशोक—अच्छा ? अब श्रीराधिका ने क्या अपने मनोभाव प्रकाश किया है और आपने क्या अनुमान किया ? ॥१६॥
मद—राधिका ने तो कुछ नहीं कहा किन्तु हमने ही अनुमान किया है ॥१७॥
अशोक--वह क्या है ?
मद—वह यह है कि-एक तो चन्द्रमा को देखते ही उस का अनादर कर देती हैं, मदमत्त कोकिल की कंठध्वनि को बड़े प्रेम से सुनती हैं और सखिगण के पूछने पर विपरीत उत्तर देती हैं इसी से उन के हृदय का भाव जाना जाता है ॥१८॥ हाय हाय ! आज राधिका के हृदय में कन्दर्प बिकार का आविर्भाव हो रहा है। शीतल चन्दन, मन्द मलयपबन एवं कोकिल के मधुर स्वर उन के लिये बिपरीत रूप से प्रतीयमान हो रहे हैं। उन बिकारबाधाओं को दूर करने के लिये वह नाना प्रकार उपाय करतीं हैं। कामबाधासे युक्त राधिका अभिनव समस्त भावों का प्राप्ति होने पर अत्यन्त खेदान्वित हो गई हैं। उन के अबिकल निश्चल नयनों से बार बार जल कण गिर रहे हैं, उनके सम्वरण के लिये वह किसी एक निर्जन स्थान में जाकर

सखियों के प्रति अत्यन्त प्रीति दिखाय रही हैं। रामानन्दराय कवि के द्वारा बर्णित यह संगीत जो कि गजपति प्रतापरुद्र के मनोहर है वह हरिचरण-परायण रसिक समाज में निरन्तर बिहार करे ॥२०॥

मद—अब तुम कहाँ जाती हो।

अशोक—मुझे राधिका ने आज्ञा दी कि हे सखि ! आज हमारी अभिनव कमलदल की शय्या पर शयन करने की इच्छा हो रही है, अतः उनके लिये कोमल कमलदल लाने को जा रही हूँ ॥२२॥

मद—(मन ही मन) अहो पुष्पचाप कन्दर्प क्या निष्ठुर रूप से बिलास कर रहा है। मैंने सुना है श्रीराधा मन्द मलयानिल सम्पर्क से कोकिल एवं भ्रमर के शब्द से अत्यन्त मदनातुर हो गई हैं। उन्होंने एकान्त में अपनी शशिमुखी से गद्गद् वाक्यों से कहा ॥२३॥

हे शशिमुखि ! अन्य सखियों से छिपाकर तुम बिकशित शतदल कमलों की एक उत्कृष्ट-शय्या शीघ्र निर्माण करो। वह शयन-गृह अभिनव कमल-दलों से युक्त हों एवं उस में पबन का मन्द मन्द संचार होय। तुम इस बासना का पूर्ण करो, कबिबर रामानन्दराय के बिरचित यह संगीत गजपति प्रताप-रुद्र के चित्त में सुख प्रदान करे॥२४॥

मद—वत्से ! तुम जाओ तुम्हारा ये कार्य्य मंगलप्रद होवें। मैं भी मुकुन्द के पास जाती हूँ ॥२५॥

अशोक—देवि ! मैं प्रणाम करती हूँ ! (ऐसा कह कर प्रस्थान) ॥२६॥

मद—(परिभ्रमण करती हुई आकाश की ओर देखकर) अहे ! शुकपक्षिगण ! तुम सब जानते हो ? कहाँ पर श्रीकृष्ण का दर्शन

मिलेगा ? क्या कहते हो, श्रीकृष्ण शशिमुखी के साथ भाण्डीर-बन में निबास कर रहे हैं। मैंने ही वहाँ पर शशिमुखी को नियुक्त किया है (एसा कह कर) पक्षिगण ! तुम क्या कहते हो–तुम कहाँ जाती हो ? मैं वहाँ जाकर गुप्तरूप से उनके सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनूँगी। (यह कह कर प्रस्थान) ॥२७॥

[विष्कम्भक–अर्थात् भूत-भविष्यत बस्तूका अंशसूचक] ॥२८॥

[शशिमुखी तथा श्रीकृष्ण का प्रवेश]

कृष्ण––आओ आओ।

शशि—(कामलेखा का अर्पण करती है)

कृष्ण—(पढ़ने लगे) यथा–

हे प्राणबल्लभ ! तुम हमारे हृदय में दृढभाव से कामबाण बेध कर रहे हो। बह दुर्यश बलवान् कन्दर्प ढूढ़ने पर भी कहीं नहीं मिलता है, केवल समस्त दिशाओं में तुम ही दृष्टि-गोचर होते हो ॥२९॥

कृष्ण—(मन ही मन) अहो ! यह अनुराग चरमाबस्था को प्राप्त हो गया है। अतः औदास्य प्रकट कर उसके हृदयस्थ भावनिष्ठा का अवलोकन करूँ। (भाव गोपन कर प्रकाश्य रूप से) यह मदननामक व्यक्ति कौन है ? बह यहाँ पर क्यों आया है, ? सुलोचना राधिका ने उस का क्या अपराध किया है जिस से बह उसके हृदय को निर्दय रूप में व्यथित कर रहा है। क्या बह कंस का कोई दूत है (ऐसा कह कर अभिमान के साथ) वह दुरात्मा कहाँ है उस से बोल दो, आज में अपनी दोनों भुजाओं से मर्दन पूर्वक इस अबला बाला की रक्षा कर सुस्थिर करूँगा। बड़ी आश्चर्य्य की बात है, मेरे वर्तमान ही में व्रज-स्त्रियों का इतना भय ॥३०॥

बिदू—(उत्तर देता हुआ) हे बयस्य ! वह कंस का कोई नहीं है। मेरा ही नाम मदन है, मैं ब्राह्मण हूँ, तुम हमारा क्या कर सकते हो ॥३१॥

श्रीकृष्ण—अरे मूर्ख ! अब परिहास का प्रयोजन नहीं है।
बिदू—हे शशिमुखि ! तुम हमारे इस प्रियमित्र के हाथ में दो लड्डू देओ, जिससे यह वही जाकर मदन को पराजित करे ॥३२
मद—(कान देकर) यह दूती आदेशानुसार कार्य्य करती है, मिलन कराने में पण्डित यह दूती वृन्दाबन में माधव के निकट छल पूर्वक श्रीराधा के रूप का ही वर्णना करती है। (निरूपण के बाद उच्च हास्य से) अहो शशिमुखी के बिकसित कमल मधु-धारा के समान बाक्यों का श्रवण करते ही श्रीकृष्ण का मत्त गजराज के समान शिर कम्पित हो रहा है, आप मदना-वेश से बिबस होकर अपने गुप्तभाव को प्रसन्नचित्त से प्रकट कर रहे हैं, ऐसा ही हो. अनुराग असीम रूप से बढ़कर माधुर्य्य का बहन करता है ॥३३॥

श्रीकृष्ण—(पुनः पत्रिका पाठ कर) सखि ! यह सम्यक् रूप में बोधगम्य नहीं हो रहा है, मैं गोपवालकों को संग लेकर वृन्दाबन में यमुना तट पर क्रीड़ा करता रहता हूँ। यह मृग-नयनी रूपवती राधिका ने हमको किस प्रकार देखा ? ॥३४॥ हे सखि ! इन गोपबालकों से पूछो कि हम कब वहाँ गये, उस राधिका ने हमको किस प्रकार देखा जिससे बह दिशा बिदिशा चारों ओर हमको देखती हुई मोह प्राप्त कर रही है। सखि ! हास्ययुक्त वाग्विलास का त्याग करो। यदि ये गोपबालक इस बात को सुनेंगे तो हमारा अत्यन्त हास्य करेंगे। यदि वह अपनी कुलमर्य्यादा का बिसर्ज्जन करती है तो यह ठीक नहीं

है, इस प्रकार हमसे अयोग्य रतिबिधान उचित नहीं है। गज-पति प्रतापरुद्र की प्रीति के लिये रामानन्दराय रचित यह मधु-सूदन के बचन रसिक समाज में आनन्द बर्द्धन करें ॥३५॥
शशि—(मन ही मन में) अहो प्रियसखी राधिका का इनसे अनु-राग हो रहा है, अब मैं क्या करूँ ॥३६॥

विदू—मित्र! इस दुष्ट सखी की बातों का यहाँ क्या प्रयोजन है? देखो देखो, यह हंसी सूर्य्य-किरण से चलायमान होकर कमलगुच्छों की छाया का अन्वेषण कर रही है। परन्तु वह कमलगुच्छ पवन से कम्पित होकर हंसी को निवारण कर रहा है ॥३७॥

कृष्ण—(मन ही मन) अहो इस का कैसा वाक्चातुर्य्य है। (प्रकाश्य करके) अरे मूर्ख! क्या अप्रासंगिक आलाप करता है, तुमको धिक्कार है ॥३८॥

विदू—मित्र! मैं क्या अप्रासंगिक कह रहा हूँ? ॥३९॥
मद—(यह सुन कर मन ही मन) अहे राधिके! तुम सर्व प्रकार से कृतार्थी हो गई ॥४०॥
शशि—(प्रकट रूप से) अहो महाभाग! तुम्हारे समान पुरुष के हम समान अनुगत जन की वंचना उचित नहीं है ॥४१॥
कृष्ण—भद्रे और सुनो, यह कुलबती बाला है जिसको पति अत्यन्त प्रिय है! हे मुग्धे! वह क्यों बिना कारण सदाचार की तिलाञ्जली दे रही है? ॥४२॥

बिदू—हे दुष्ट गोपबालिके! हमारे प्रियमित्र धर्म्मपरायण है, अतः यहाँ से तुम शीघ्र पलायन करो (श्रीकृष्ण के हृदय पर हाथ रख कर) अरि! गोपिके! फेर उत्तर मत देना, यह देख, हमारे प्रियमित्र श्रीकृष्ण के हृदय में वह कुरंगनयना कुर कुर

कर रही है इससे हमको एसा कार्य्य करना पड़ा। (श्रीकृष्ण के कान में) मित्र ! तुमने इसको स्वप्न में सहस्रों बार देखा होगा, इस समय उसी को ही याचमान की तरह चाहते हो ॥४३
कृष्ण—अरे मूर्ख ! तुमने हमारे स्वप्नवृत्तान्त को कैसे जाना ?।
बिदू—मित्र ! क्या तुम हमको स्वप्न में परित्याग करते हो, ऐसा मत कहो, स्वप्न में ही मैंने देखा है ॥४४॥
कृष्ण—(मन में विचार कर) यद्यपि बाचाल यह ब्राह्मण-बालक परिहास से आलाप करता है तथापि यथार्थ बात कह रहा है। कहने दो परन्तु उस बाला-रमणी का मनोभाव सम्पूर्ण रूप से जानना उचित है। (प्रकाश्य रूप से) भद्रे ! उस बाला को इस असाधारण साहस से निवृत्त कराओ, (पुनः विदूषक से) मित्र ! आओ हम सब गोवत्स अन्वेषण के लिये चलें (शशिमुखी से) भद्रे तुम भी उस बाला को समझा कर निवृत्त कराओ ॥४५॥
सखि ! देखो, जैसे शशधर को देख कर कमल प्रफुल्लित नहीं होता है, जैसे रजनी दिवाकर को पति नहीं मानती है, तैसे ही कुलबती स्त्रियों का अन्य पुरुष में रति अनुचित है। उस से अत्यन्त पाप होता है। अतः हे शशिमुखि ! उस कमल-बदनी बाला को निबारण करो, क्यों कि वह काम-पीडिता होकर इस प्रकार अनुचित बिषय में रत हो रही है। यदि वह कुलाचार को नहीं मानती है तो हम अपनी मर्य्यादा को क्यों छोड़ दें। रामानन्दरायकबि के बिरचित यह संगीत गजपति प्रतापरुद्र के हृदय में उदय हों। (एह कह कर, सबका प्रस्थान)

द्वितीय अंक समाप्त हुआ ॥४६॥



❀ अथ तृतीयाङ्क ❀



[अनन्तर अशोकमञ्जरी प्रवेश करती है ।]

अशोक—अये ! मैं ने सुना कि—मर्दनिका, बनदेवता और शशिमुखी के साथ श्रीराधिका कोई रहस्य करती हुई माधवी-निकुञ्ज में अवस्थान कर रही हैं, इस से मैं उन को देख कर ही जाउँ । (आगे को देखती देखती उन के समीप गई) अरि ! ये धीरे धीरे क्या कर रही हैं, यहाँ जाना उचित नहीं है । (यह कह कर प्रस्थान) ॥१॥

[तदनन्तर शशिमुखि,मर्दनिका के द्वारा प्रबोधित राधा आती हैं]

राधा—(दीर्घनिश्बास ले कर) सत्य ही माधव ने हम को परित्याग कर दिया ॥ २ ॥

हाय मैं ने कुल-बनिताओं का गृहीत सदाचार को विना बिचार तृण के समान माना है, हाय हाय ! यह कैसा अयोग्य कार्य्य हुआ, मैं क्या करूँ, बताओ कौन श्रीकृष्ण को बश में करेगा ? शिब शिब, मैंने शिशु होकर युबती भाव लाभ किया है, बडा कष्ट है, क्या मेरे समान और भी कोई निर्ल्लज है ? रामानन्दराय वर्णित यह संगीत राजा प्रतापरुद्र का आनन्द बिधान करें ॥ ३ ॥

शशि—मैं ने तो सम्पूर्ण बृत्तान्त कहा, अब जो कर्त्तव्य होय उसका बिचार करो ॥ ४ ॥

राधा—(संस्कृत में) सखि ! मनोहर सामबेद के समान वंशीजात नाद-ब्रह्म को सुनकर, त्रैलोक्य-मोहन, नवीनतरुण, साक्षात् केलिकला के समान श्यामसुन्दर को देख कर, सूर्य्य और चन्द्रमा के समान शोभा बाले उन कान्तसंग का ध्यान

करते करते मेरा मन तुषानल के समान मुझ को दग्ध कर रहा है॥ ५॥

शशि—प्रियसखि ! इस समय अस्थान बस्तू में आग्रह परित्याग करो॥ ६॥

मैंने तुम्हारे लिये उन श्रीकृष्ण से जो जो बातें कहीं उन्होंने वो ही वोही बातों का निवारण कर आपके शैशवभाव को लक्ष कर (दिखला कर) व्यर्थ कर दिया है। हे सुबदने श्रीकृष्ण का ध्यानछोड़ दो, यह कुसुम-गलित मधुमिश्रित बिष है, इस से कृष्ण भिन्न अन्यत्र मन लगाओ॥ ७॥

सखि ! पति यदि हीन होय तो रमणी उसका ध्यान करती है। हिरणी क्या सिंह के पराक्रम देखकर उस से अनुरक्ता होती है ? कभी नहीं। हे राधिके ! माधब से अनुराग मत करो। चन्द्रमा को क्षीण देखकर क्या कुमुदिनी रमणीय भाव प्रकट नहीं करती ? यह रामानन्दराय वर्णित गीत निरन्तर गजपति राजा प्रतापरुद्र के हृदय को सुखी करें॥ ८॥

राधा—(शशिमुखी के वाक्य को सुनकर आखो में जल-भर वोलीं) देबि मदनिके ! यह कैसी रीति है ? श्रीहरि तो प्रेम-विच्छेद-वेदना नहीं जानते हैं, और प्रेम भी स्थानास्थान नहीं जानता है, मदन भी दुर्व्वल हम को नहीं जानता। दूसरा दूसरे के दुःख को जानने में असमर्थ है, जीबन भी हमारे बश में नहीं है, यौवन भी दो तीन दिन का है, हाय हाय ? बिधाता की यह कैसी गती है ? ॥६॥

मद—क्यों इस प्रकार उदास होती हो, देखो नब बिकसित केतकी-कुसुम के मनोहर सौरभ द्वारा भ्रमर दूर से ही आकृष्ट होता है, जब पुष्प के ऊपर घूमता हुआ उस पुष्प रज में रस नहीं देखता है तब वह भ्रमर क्या उस पुष्प का त्याग नहीं

करता है अर्थात अवश्य ही त्याग करता है ॥१०॥

राधा--(धैर्य्यावलम्बन पूर्बक) अच्छा तो अव छोड़ दिया (ऐसा कह कर भय चित्त से कम्पित हो गद्गद वाणी से) देवि ! कोई अपराध नहीं है। क्यों कि मधुरिपु श्रीकृष्ण जब दैववश मेरे नयन गोचर हुए तब से इस दुष्ट मदन ने चित्त को हरण कर लिया (क्षण-काल मौन होकर दीर्घ निश्वास त्याग पूर्वक) फेर भी जिस मुहूर्त्त में वे मेरे दृष्टि गोचर होयगें तब मैं उस समय उन समस्त घड़ियों को रत्नों से सुशोभित कर देउँगी ॥ ११ ॥

मद—(मन ही मन) अहो ! इस का अनुराग ने सीमा को अतिक्रमण कर लिया है। अब प्रिय कथन के द्वारा इस को अन्य-मनस्क करूँ। (प्रकाश रूप से वत्से ! देखो देखो ॥१२॥ तुम ने अपने कर-कमल द्वारा जिस के मूलदेश में जल-सेचन कर कर बर्द्धित किया है उस आम्रवृक्ष का अग्रभाग कुछ मुरझा गया है। मैं जानती हूँ कि यह सब भ्रमर मधुर आलाप कर रहे हैं ॥ १३ ॥

राधा—(त्रास के साथ उत्कम्पित हो कर) अरि शशिमुखि ! हम को स्मरण रखना।

श.शि—(मन मन में) अहो ! क्या यह अनर्थ परम्परा उपस्थित हो गई (प्रकाश्य रूपसे) वत्से ! व्याकुल मत होना, तुम्हारे प्रति माधव के हृदय में अनुराग प्रतीत होता है ॥१४॥ वत्से ! यदि तुम्हारे प्रति श्रीकृष्ण का हृदय अनुरक्त नहीं है तो क्यों शशिमुखी के सरस-वाक्यों से उन के बदन सरोज पुलकित हो जाता, वे सहस्र सहस्र क्रीडाओं का परित्याग कर क्यों मन्द मन्द हास्य करते हैं, अतः हे मुग्धे ! अत्यन्त शंका का त्याग करो, क्या इन सब बातों की आलोचना

से तुम्हारा मन स्थिर-बिचार नहीं होता है। रामानन्दराय कबि के द्वारा बिरचित यह संगीत रसमय गजपति प्रतापरुद्र के हृदय में निबास करें॥ १५॥

राधा--देबि! मरीचिका से दह्यमान होकर कुसुमारी हिरणी-वाला किस प्रकार जीबन धारण करेगी? घटाओं-मेघ वर्षने का अनुमान कर क्या जीवन-रक्षा हो सकती है॥ १६॥

मद्--बत्से! स्थिर हो, उन माधव का अभिप्राय जानने के लिये मैंने माधबी को नियुक्त किया है वह तुम्हारे चित्रपट लेकर श्रीकृष्ण के समीप गई है॥ १७॥

[अनन्तर चित्रपट हाथ में ले माधवी प्रवेश करती है]

माधबी--देवि! प्रणाम करती हूँ॥ १८॥

मद्--वत्से! तुम्हारी कुशल तो है? तुमने क्या माधब का अभिप्राय जान लिया?॥ १९॥

माधवी--हाँ॥ २०॥

मद्--अच्छा कहो तो॥ २१॥

माधवी-- (चित्रपट देखाने को उद्यत होती है)॥ २२॥

राधा-- (लज्जा पूर्वक चित्रपट मांगती हैं)॥ २३॥

माधवी--हम को पारितोषक देओ॥ २४॥

मद्--निश्चय ही राधा के हृदय-भाव से स्पष्ट रूप से जाना जाता है कि श्रीकृष्ण इन में अनुरागी है। यदि प्रमाद बस प्रेमाङ्कुर भग्न होता है तो फिर संयोग होना असाध्य है (प्रकाश्य कर के) हे माधवी! लाओ श्रीराधा का चित्रपट देओ॥ २५॥

माधबी--(थोरा सा दिखा कर वस्त्राञ्चल से ढ़क लेती है)॥ २६

शशि-- (जोर से छीन कर ले लेती है एवं देखती है) अये इस में तो कुछ अक्षर भी लिखे गये हैं (एसा कह कर पढ़ने लगती है)

अयि सुमुखि ! हमारे बिमुख भाव को देख कर मन में कोई शङ्का मत करना, प्रथम बिकसित कुमुदनी को देख कर किस को अच्छा नहीं लगता है। नब बिकसित पद्मिनी का मनोहर सौरभ से तरुणव्यक्ति का धैर्य्य शिथिल होता है इस में सन्देह नहीं है, उस समय वह तटस्थभाव का धारण नहीं कर सकता है ॥२७॥

माधवी--सखि ! प्रियानुराग सुख में वढें ॥२८॥

राधा--(दीर्घनिश्वास लेकर) सखि ! अभि हमारा एसा भाग्य कहाँ है ? (मर्दानका के प्रति) देवि ! इन अक्षरों का क्या अर्थ है । २६॥

मद--वत्से ! इन का अर्थ यह है कि-"तुम्हारा हृदय स्पष्ट जान कर मुकुन्द ने तुम से स्पष्ट अनुराग किया है किन्तु यदि किसी प्रमाद बश वह प्रेमाङ्कुर भग्न हो जाता है तो फिर वह सम्भलने में दुःसाध्य हैं अतः तुम अतिशय ब्याकुल मत होना क्यों कि अब हमारा मनोरथवृक्ष फलवान हो गया है ॥३०॥

राधा--देवि ! हम को अभी बिश्वास नहीं हो रहा है किन्तु इस बिषय में तुम ही एक मात्र आश्रय हो ॥३१॥

मद--वत्से क्या चिन्ता है, मैं जानती हूँ अनुमति देओ ॥३२॥

राधा--(प्रणाम कर) भगवति ! देखो यह निकुञ्ज गृह गुञ्जायमान भ्रमरों से अत्यन्त व्याकुल हो रहा है, सूर्य भी अस्त प्राय हो गया है। मन्द मन्द पवन के सञ्चारण से भ्रमरवृन्द तरलित हो रहे हैं, और चन्द्रमा उदय प्राय हो रहा है अतः जो उचित हो सो करो ॥३३॥

देवि ! भ्रमर-गुंजार से मनोहर यह समस्त कुञ्ज भयानक हो रहा है। मन्द मन्द पवन पुनः इन निकुञ्जों को दूषित कर रहा है। मैं क्या कहूँ, कन्दर्प के शराघात से मेरा

चित्त व्याकुल हो रहा है। जो मत्त कोकिलों के मधुर शब्द से स्थिर नहीं रहने पाता है। संग-सुख तो इस शरीर को बड़ा भय का पात्र बनाय रहा है। अतः हे देवि ! जो उचित समझ सो करो। रामानन्दराय के यह संगीत राजा प्रतापरुद्र के हृदय में सुखबिस्तार करै ॥ ६४॥

मद--वत्से ! मैं इस वकुलवृक्ष के नीचे मिलूँगी ३५॥

(सब का प्रस्थान)

—०: अथ चतुर्थोऽङ्क :०—



मद--अये ! मैंने मदनमञ्जरी के मुख से सुना है कि मुकुन्द मधुमंगल के साथ बकुलवृक्ष के नीचे वैठे हुए हैं । अतः वहाँ चलूँ। (आगे दृष्टिपात पूर्वक) अये! मुकुन्द बिषण्ण-चित्त से बटु के साथ कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। अतः निश्चय है कि यहाँ कामदेव बिलास कर रहा है। जो भी कुछ हो, मैं इस माधबीगुच्छ के अन्तराल में रह कर इन के परामर्श सुनूंगी (ऐसा कह कर छिप जाना)

[अनन्तर मदन-बिकार आबिष्कार पूर्वक विदूषक के साथ आलाप करते करते श्रीकृष्ण का प्रवेश]

मद—(स्वगत) अहो ! माधब का मुखमण्डल चन्द्रमण्डल से भी सुन्दर है। परन्तु चन्द्रकिरण से मलीन नलिनी के समान निरन्तर मदन-शराघात से बिधुर प्राप्त हो रहा है। हाय ! बड़े कष्ट की बात है कि प्रिय श्रीकृष्ण के इस शरीर को देख कर मेरा चित्त शत शत प्रकार से बिदीर्ण हो रहा है। इन के हृदय में हार तक भी नहीं है, चन्द्रकिरण से आहत मर-

कत-शिलाके सभान विरह से धूषर देखती हूँ । रामानन्द-राय बर्णित यह संगीत पुण्यसमुद्र गजपति प्रतापरुद्र के हृदय को चिरकाल पर्य्यन्त सुखी करै ॥२॥

कृष्ण—सखे ! यदि उस कमलनयना राधिका ने अपनी सह-चरी द्वारा हम से निरतिशय प्रेम प्रकट किया था परन्तु मैंने उसका उपहास किया। हाय ? सीप समझ कर मैंने महा-मणि का परित्याग कर दिया है। यदि दैबवश मेरे नयन-गोचर होय तो इस से बढ़ कर भाग्य की सीमा क्या हो सकती है ॥३॥

बिदू—हे मित्र ! तुम से मैंने पहले ही कहा था, कि इस अनु-रागिणी को परित्याग मत करना, अब क्यों इतने व्यग्र हो रहे हो, जब भोजन की इच्छा नहीं है तो लड्डु क्या करोगे। अब इस बिषय में कुछ उपाय करता हूँ ॥४॥

कृष्ण—क्या उपाय ?

बिदू—मैं ब्राह्मण हूँ, मन्त्र पढ़ पढ़ कर इस मृगाक्षी राधिका को आकर्षण करूँगा ॥५॥

कृष्ण—तुम्हारी ब्राह्मणता हम जानने हैं, अब मदनिका को आह्वान करो ॥६॥

मद—(प्रवेश कर) बत्स ! मङ्गल होय ॥७॥

कृष्ण—(आगे को देख कर) यह मदनिका ही है (सप्रश्रय) देवि ! आप का कुशल तो है ? ॥८॥

मद--महाभाग ! तुम्हारे मुखचन्द्र दर्शन से ही समस्त कुशल हैं ॥९॥

विदू--देवि ! मेरे प्रिय-मित्र कन्दर्प-शर से व्याकुल हो रहा है अतः उस गोपकुमारी को लेकर आना ॥१०॥

कृष्ण--धिक् मूर्ख, इन के आगे ऐसी बात मत कहना ॥११॥

बिदू--हम लोग ब्राह्मण हैं, सरल स्वभाव के हैं हम स्पष्ट कहते हैं ॥१२॥

मद--(हास्य पूर्वक) बत्स ! मैं जानती हूँ कि तुम सत्यबादी हो ॥

बिदू--ऐसा ही है देखो देखो इन पद्मपत्रों को (एसा कह कर सूखे पत्रों का दिखाने लगा) ॥१४॥

देवि ! बनमाली के लिये पद्मबन में एक ही कमलदल नहीं है। वृन्दाबन में क्या मनोहर बिकसित पल्लव देखे हैं । हे सरले ! तुम मेरे मित्र कृष्ण को नहीं देखती हो, आप के ऊपर आशा करके समस्त बिलास परित्याग कर जलदतृष्णा चातक के समान बैठे हैं, कहो तो सही, यदि मदन इनके हृदय में नाना प्रकार क्रीड़ा आबिष्कार करके निबास नहीं करता है तो क्यों ये चन्द्र को देखते, "शीघ्र राहू को लाओ, शीघ्र राहू को लाओ" इस प्रकार बारम्बार कहते। कन्दर्प शराघात से अति आहत श्रीहरि के बिरहमय ये रामानन्दराय का संगीत गजपति प्रतापरुद्र के आनन्द बिस्तार करें ॥१५॥

मद--अब तक क्या हुआ ? ॥१६॥

बिदू--प्रियमित्र मैं ने तुम से कहा भी तो, नहीं जाते हो, मैं ही जाकर ले आऊ, मैं भी तो निसृष्टार्थ दूत हूँ (एसा कह कर चलने को उद्यत होना)

कृष्ण--(दुपट्टा पकड़ना) ॥१८॥

मद--बत्स ! हम से क्यो छिपाते हो ? ॥१९॥

कृष्ण--देवि ! कुछ तुम से पूछने की इच्छा होती है ॥२०॥

मद--निष्कपट से कहो ॥२१॥

कृष्ण--देवि ! आप के मुख से उस सुबदना राधिका के बदन-सौन्दर्य्य का श्रवण कर मैंने चन्द्रमा का तिरस्कार कर दिया, इस से वह मेरे हृदय में निर्दय-रूप से पीड़ा दे रहा है ।

बिधुबदना का अंग स्पर्श के कारण जिस को मैंने बहुत सम्मान किया था वह मलयपबन मेरे प्राणों का हरण कर रहा है ॥२२

मद--(मन ही मन) मेरी मनोकामना तो पूर्ण हुई साथ ही साथ राधिका भी कृतार्थी हुई । अब उस की विरहावस्था का वर्णन करूँ । (प्रकाश्य करके) बत्स ! वह कल्याणी केबल लाबण्यमात्र शेष रह गई है ॥२३॥

हे बत्स ! वह अत्यन्त क्षीण हो जा रही हैं, शीतल-शिला में चन्दन घिस कर शरीर में लेपन करने की चेष्टा करती हैं, सखियाँ जब कुमुदिनो दल की शय्या वना कर उम में उन को शयन कराती है तव शरीर के ताप से कमलदल शुष्क हो जाते हैं, वह क्षणभर शयन कर हाहाकार करके उठ चली जाती हैं ॥२४॥

हे माधव ! काम की बाधा वड़ी भारी हो रही है। राधा तो अतिकष्ट से जीबन धारण कर रही हैं । उनके नेत्र-जल से समस्त भूमि गीली होकर कीचड़ हो जाती है, यदि वह कहीं जाने के लिये पद संचार करती हैं तो क्षीणता के कारण उस कर्द्दम में गिर पड़ती हैं। हाय तुम उस सरल हृदय में वक्र होकर किस प्रकार निबास करते हो, हाय हाय तौ भी उन का काम शान्ति नहीं करते हो। रामानन्दराय का यह संगीत शुद्ध हृदय गजपति प्रतापरुद्र राजा के सुख बर्द्धन करें ॥२५॥

विदू--गोपिकाऐं परम साहसवती हैं एसा मैंने अनुमान कर लिया। क्यों कि इस समय वे सब चन्द्र-चन्दन के द्वारा शरीर में अनुलेपन करने को इच्छा करने लगीं, मेरे प्रियमित्र किन्तु चन्द्रमा को देख कर ही सूर्य्यकिरणों के समान तापित होकर अपने अंगों को छिपा कर तथा दोनों नेत्रों को मूँद कर अब-स्थित करते हैं। यदि अकस्मात् चन्दनबायु शरीर में लग जाता

है तब सिद्धमन्त्रजप से भुजंग के समान दौड़ कर पलायन करते हैं ॥२६॥

कृष्ण--(मन ही मन) ये कहता तो सत्य है (प्रकट करके) अरे मूर्ख ! अधिक बाचालता मत करै ॥२७॥

मद्—तुमने राधा की परीक्षा करने के लिये कितने कितने हि भाव प्रकट कीये हैं ॥२८॥

कृष्ण—(शंकित मन से) देवि ! क्या उनने हमारा अभिलाषा को छोड़ दिया ? ॥२६॥

मद्--बत्स ! मैंने देखा, वह गुरुजनों के कुबाक्य में दोष नहीं मानती है, सखियों के परिहास बाक्यों को सुन कर सुख नहीं मानती है, चन्दन को बिष के समान मानती है, चन्द्रमा को देख कर अग्नि समझ लेती है इस समय इन अवस्थाओं को निवेदित करने के लिये मैं आई हूँ ॥३०॥

कृष्ण--(उत्साह पूर्वक) देबि ! आपके मन मैं कोई वंचना नहीं है। आप इस समय हमको कन्दर्पसमुद्र से उद्धार करने को आई हो, आपकी यह निर्हेतुक बत्सलता है। अतः राधिका को प्रसन्न कर इस केशरकुंज में ले आओ, इसी से आप की नीतिचतुराई का बिस्तार होगा ॥३१॥

मद्--अच्छा मैं निश्चय ही लेकर आती हूँ ॥३२॥

बिदू--देबि ! तुम्हारा स्वभाव सरल है । इस को मिथ्या मत समझना। जाओ उन को लेकर शीघ्र आजाना, मैं ब्राह्मण हूँ इस विषय में सांक्षी रहा ॥३३॥

कृष्ण--देवि ! अब अन्य सम्भाबना का प्रयोजन नहीं है, जाओ, शीघ्र ही हमारा कार्य्यसिद्ध करो ॥३४॥

मद्--अच्छा मैं जातीं हूँ, आप का मंगल होय (प्रस्थान) (सब का प्रस्थान)

[अनन्तर संकेतयोग्य वेश से राधिका का प्रवेश]

राधा--सखि माधवि ! तुम क्या हम से बंचना करती हो।

सखी--यह अन्धकार मार्ग है, जिसमें गिरि-गुहा कुछ भी नहीं दीखता है। अभीतक देवी मदनिका लौट कर नहीं आई। वे वहाँ क्या कर रही हैं ? हाय ! विधाता क्या हमारे लिये हां अहितकारी हुआ है, हाय ! क्या कष्ट है ? हमारा यह असीम दुर्गम बन का लंघन कर आना निष्फल हुआ है। रामानन्दराय वर्णित यह संगीत नरपति प्रतापरुद्र के अत्यधिक आनन्द वर्द्धन करें ॥३७।

माधवी--प्रियसखि ! अन्य प्रकार सम्भावना मत करो, देवी मदनिका आ रही जानना।

[मदनिका का प्रवेश]

मद--वत्से ! तुम्हारा भाग्य अच्छा है।

राधा--(हर्षोल्लास पूर्वक) देवि ! आओ, वहाँ का क्या वृत्तान्त है ॥४०॥

मद--प्रबल मदनज्वराक्रान्त होना।

राधा--कहो तो सही वह किस प्रकार है ? ॥४२॥

मद--वत्से ! गोविन्द तुम्हारे बिरह में व्याकुल होकर क्या क्या चेष्टा नहीं करते हैं। वह चन्द्रमा को देख कर उस की निन्दा करते हैं, चन्दन को देख कर उसे फेंकने लगते है, गलाहार को दूर कर देते हैं, ओस (मेघाभास) को देख कर भय भीत हो जाते हैं, किसी बन्धु से वार्त्ता तक भी नहीं करते हैं, वे तो निरन्तर कुंजगृह में शय्यारचना करते रहते हैं,। अतः हे राधे ! शीघ्र जाकर कुंज में माधव की आराधना करो ॥४३॥

[अनन्तर निकुंज में श्रीकृष्ण]

कृष्ण–सखे ! मदद्दिका ने क्यों इतनी देर की ? (सातङ्क) एक तो वह कृशाङ्गी पीनस्तन तथा गुरुजघन भार से मन्द मन्द गमन करती है, मेरी संकेत की हुई यह कुंज अति दूर है, और बाला रमणी स्वभाव करके भीरु होती है, वन भी घोर अन्धकारमय हो रहा है । वह बाला किस प्रकार हमारे निकट आवेगी । हाय हाय इस बिषय में कौन हमारा आश्रय होगा ? ॥४४॥

[क्षणकाल चिन्ता कर दीर्घ श्वास त्याग करना]

वह क्या हमको अपरिचित समझकर विमुखी हो गई ?' सहचरियों के बाक्यों से क्या उनको विश्वास नहीं हुआ है ? किम्वा यह वन घोरअन्धकारमय हो रहा है इससे मार्ग तो नहीं भूल गई है, अथवा अत्यन्त दुर्बलता के कारण कन्दर्पवाणों से आहत होकर यहाँ तक नहीं आ सकी ।।४५।।

(आगे को देखकर) अरे ! क्या चन्द्रमा का उदय हो रहा है, चक्रबाक् समूह आर्त्तनाद कर रहा है, कुमुदिनी भी बिकसित होने लगी है, पद्मवन में पद्मसमूह मूर्च्छित हो जा रहे हैं, तब तो बोध हो रहा कि चन्द्रमा उदयाचल में क्रीड़ा कर रहा है ॥४६॥

हाय बह बाला सखियों के बाक्य का विश्वास करके अन्धकारोचित वेषधारण कर हमारे संकेतकुंज के लिये आ रही होगी, परन्तु इस समय यह दुष्ट चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका द्वारा पूर्वदिशा को दूषित कर रहा है। इसमें वह स्वच्छन्दता से नहीं आ सकती है न लौटकर जा सकती है। (विनय पूर्वक अञ्जली जोड़ कर) हे पूर्बाचल ! तुम हमारे परम मित्र हो, हमारे ऊपर कृपा करके अपने शत शत शृंगों को ऊँचे करो, यदि यह चन्द्र दृष्टि गोचर हो जावेगा तो राधिका का आगमन में बाधा एवं हमारा जीवन-संकट दोनों आ पड़ेगा ॥४८॥

बिदू--(कान देकर) मित्र ! सुनो सुनो ये क्या रुणु रुणु शब्द हो रहा है ? ॥४६॥

कृष्ण--(नेपथ्य की ओर कान लगा कर) क्या उस खञ्ज-नाक्षी के नूपुरों का शब्द है ? क्या भूषणों का शब्द है ? अथवा काञ्ची का शब्द है ? अथवा कामातुर सारसों का कंठ रव है ? (इस प्रकार गोबिन्द के नाना तर्क बितर्क करते करते श्रीराधिका सखियों के हाथ में हाथ रख कर निकुञ्ज-केलि गृह में उपस्थित हुई) ॥५०॥

अहो ! श्रीराधा कुञ्चित केशों में यमुनातरंगों से रंगायमान फेनसमूह के समान समस्त पुष्पों का धारण करती नृत्यपरा-यण दक्षिण नयन से कन्दर्प को नृत्य करने का आदेश करती, मधुरवेश से बिभूषित हो श्रीकृष्ण के समीप गमन कर रहीं हैं। जिनके पद संचालन से हृदय हार मन्दमन्द आन्दोलित हो रहा है। शंका और लज्जा से रसभरे मधुर चञ्चल नय-नाञ्चल द्वारा मानो कौतुक पूर्वक मधुमथन को कुबलय (नीलकमले) उपहार दे रहीं हैं। रामानन्दराय के रचित यह संगीत मदनरूप नरपति प्रतापरुद्र का रसबिस्तार के द्वारा आनन्दित करैं ॥५१॥

बिदू—(आगे की तरफ देखकर) अरे सखा ! देखो हमारी जय हुई। यह उज्ज्वलांगी राधिका इस केशरकानन में आ रही हैं ॥

[मदनिका का प्रवेश]

मद—अहे बत्सयुगल ! बहुत बिलम्ब से सुहृदों का मनोरथ सिद्ध हुआ है। अब आज्ञा देओ तो दूसरे स्थान को जाऊँ ॥५३

बिदू—सखे ! हम को भी अन्य किसी निकुञ्ज में जाने की आज्ञा देओ (एसा कह कर प्रस्थान) सब का प्रस्थान

(इति राधाभिसार नामक चतुर्थाङ्क समाप्त)



×:०÷: अथ पंचमाङ्क :÷०:×



[शशिमुखी का प्रवेश]

शशि—(उत्कण्ठित मन से) अये आज निकुञ्ज में मङ्गलमय राधा-माधव दानों का क्या वृत्तान्त हो रहा है कुछ मालूम नहीं है, देवो के पास जाकर पूछूँ। (आगे की तरफ देखकर) अहो! यह बनदेवी निद्रा मुकुलित नेत्र से धीरे धीरे यहाँ आ रही है ॥१॥

(संस्कृत में) इस के दोनां नेत्र डगमग डगमग कर रहे हैं, आलस्य युक्त नेत्रों के तारे निश्चल दिखाई दे रहे हैं, दोनों भुजा शिथिल होकर स्कन्धदेश से मानों गिर पड़ते हैं, मन्द मन्द गमन के द्वारा चरण स्खलित होने से नूपुर बिपरीत शब्द कर रहे हैं, अहो आज देवी निद्रायुक्त शरीर से हमारा आनन्द बिस्तार कर रही है ॥२॥

रति के उपरान्त जैसे रात्री बिताकर कामिनी चली जाती है तैसे ही ये मदनिका आ रही है, इसको देखकर मेरा मन आनन्दित हो गया है। प्रातः काल जैसे सलिल के समीपवर्त्ति चन्द्रमण्डल में अरुण कमल का प्रतिबिम्ब दीखता है तैसे ही इसके नेत्र ईषत् मुकुलित और वदन मलिन दीख रहा है। दोनों भुजा शिथिल हो गई हैं भुजाओं के मणिमय कंकण झुन झुन शब्द कर रहे हैं, चरणों का पात बिषम रूप से हो रहा है. उस से नूपुरों का मनोहर शब्द निवारण हो रहा है। रामानन्द-राय के रचित यह संगीत गजपति प्रतापरुद्र के हृदय में आनन्द बिस्तार पूर्वक रसिक जनों को बिलासित करै ॥३॥

[उपरोक्त वेश से मदनिका का प्रवेश]

मद—(दोनों नेत्रों को मीडती हुइ आगे की तरफ देख) अहो बसन्त ऋतु की रात्रि का अबसान कैसा सुन्दर है ॥४॥ कहीं तो मलय पवन कमल - बन की सुगन्धि ले कर मन्द मन्द सञ्चरण कर रहा है। कहीं तो कोकिल गण आम्र वकुल का आस्वादन कर आनन्द से कुहू कुहू शब्द कर रहा है। कहीं प्रफुल्लित लताओं को देख कर भ्रमर पुञ्ज गुञ्जन कर रहे हैं, कहीं तो चकबा चकवी दोनां सुकोमल मधुर आलाप कर रहे हैं ॥५॥

[दो तीन पाद चल कर आनन्द प्रकाश करके]

अये ! उद्दीप्त कन्दर्प चातुरी के परिचय प्राप्त, अनुरक्त युवा-युवती गण रात्रि में जागरण करके निद्रा का प्राप्त होकर गृह में शयन करते हैं। उन दम्पतियों के साथ समता लाभ करने के लिये यह मलयपबन अल्प विकसित कमलवन के आश्रय लेने को जा रहा है ॥६॥

[आगे की तरफ देख कर बिस्मयपूर्वक]

अहो यह चकबी प्रातःकाल चकित नयनों से चारों ओर देख रहा है। कभी तो अत्यन्त प्रमद बश अपने पति को आलिङ्गन कर रही है, कभी तो अत्यन्त उत्कंठा से कान्त के प्रति कटाक्ष पात करती है। अहो चकवी की यह अवस्था देख कर रसज्ञा कौन स्त्रीजन इस के आचरण नहीं करती है ? प्रातःकाल में बधूजन इस प्रकार आचरण करती है ॥७॥

[थोड़ी देर अन्यत्र जा कर आश्चर्य्य युक्त होकर]

अहो ! अत्यन्त रमणीयता हो रही है, यह भ्रमरी ईषत् बिकसित शतदल कमल में पराग को देख कर उसका आस्वादन की इच्छा से जा रही थी, दैवात् इस कमल के पराग में आपकी प्रतिच्छबि को देख यह मेरा स्वामी है एसा निश्चय किया। परंतु उत्कण्ठित हो जाने के कारण बहाँ नहीं जा सकी। उस ने

उस समय व्यग्रचित्ता अपने पति मधुकर को आता देख कर विस्मय पूर्वक संदिग्धा हो गई । न वह वहाँ से जा सकती है न रह सकती है। दोनों में से कौन मेरा पति है यह भी नहीं जान पाई, केवल बारबार चारों ओर घूम रही है ॥८॥

शशि—देवी तो प्रातःकाल की शोभा को देख कर आहृतचित्ता हो रही है, जिससे मुझ को नहीं देख रही है। अतः पास में जाकर प्रणाम करूँ। (नकट जाकर) देवि ! प्रणाम करती हूँ ॥९

मद—कौन ? शशिमुखी वत्से मैं बहुत समय से अन्य मनस्क रहने के कारण तुम को नहीं पहचान सकी ॥१०॥

शशि—आप निद्राकुलासी मालूम पड़ती हो ॥११॥

मद—वत्से ! निद्राकुला ही हो रही हूँ ॥१२॥

शशि—एसी क्यों हो रही हो ?

मद—आज निकुञ्ज में अवस्थित राधामाधव के उन उन क्रीड़ा-कौतुक को देखते देखते रात्रि व्यतीत हो गई ॥१३॥

शशि—वहाँ का वृत्तान्त किस प्रकार है सो तो कहो ॥१४॥

मद—सुनो, (दोनों नेत्रों को मार्जन करके) वत्से ! निकुञ्ज प्रवेश पर्य्यन्त तो वृत्तांत तुम को मालूम ही है ॥१५॥

शशि—उसके आगे कहो ॥१६॥

मद—वत्से ! राधिका के रूप को देख कर श्रीकृष्ण स्तम्भित हो गये, परन्तु उनको देखकर राधिका का मन औदास्यता पूर्वक लज्जित होकर कन्दर्पभय से शंका करने लगा। तव ही श्रीराधा का तटस्थ भाव चिरस्थायी हो जाता जव कि कन्दर्प वाण समूह के पक्षपात से मुररिपु का कम्पोदय एवं मृगाक्षी का आश्वास बिस्तार न होता॥

शशि—आहा ? कैसा आनन्द है कैसा आनन्द है, मैं तो कृतार्थी हो गई ॥१८॥

मद—वत्से ! और इस से वढ़ कर हम लोगों की क्या कृता-

र्थता हो सकती है ? ॥१९॥

शशि—देवि ! और भी कुछ देखा ? ॥२०॥

मद—समस्त ही देखा था ॥२१॥

शशि—उस के पीछे और क्या ? ॥२२॥

मद—पहले तो दोनों शंकित हुए, फिर मनोभव के दुर्वार शराघात से व्यग्रचित्ता होकर लज्जित हुए, श्रीराधिका अधोमुखी होकर मन ही मन में अभिमान करने लगी कि मैं रूपवती होकर नागर को स्तुति किस प्रकार कर सकती हूँ, मेरा इस में अपमान होगा। (असूया प्रकट कर मन ही मन में) देखूँ ये कैसे बिदग्ध हैं, मान के द्वारा समस्त कार्य्य साधन करूँगी एसा बिचार कर अधोवदन हो गईं। श्रीकृष्ण उन के मनोभाव जान गये, आपने प्रेम पुलक चित्त से उत्कण्ठित हो राधिका का हाथ पकड़ कर निकुंज गृह में प्रवेश किया, उसके उपरान्त दोनों का जो आश्चर्य्य विहार हुआ उस से कन्दर्प का चित्त भी विस्मय रस से स्निग्ध होने लगा ॥२३॥

हे शशिमुखि ! मैं अधिक क्या कहूँ, मैंने श्रीराधामाधव की अद्भुतलीला देखी है। राधिका मृदु मृदु नूपुर शब्द आविष्कार करती शय्या के समीप गमन करने लगीं, माधव भी उन्हीं के समान पाद संचारण पूर्वक अग्रसर होकर गमन करने लगे। दोनों में किंचित मात्र भी भेद प्रतीत न हो सका। दोनों कन्दर्प के बिषम शर से पीड़ित हो गये। इस के अनन्तर नख एवं दशनाघात से दोनों का शरीर विदीर्ण हो गया। दोनों भय बिस्तार पूर्वक दीर्घ-श्वास लेने लगे। दोनों का शरीरस्थ चिर खेद दूर हो गया। रामानन्दराय वर्णित यह संगीत नरनाथ गजपति प्रतापरुद्र का आनन्द बिस्तार करें ॥२४॥

शशि—देवि ! इस में तो हम को असंगत सा मालूम पड़ता है॥२५

मद—असंगत क्या है ? ।।२६।।
शशि—उन का इस प्रकार कन्दर्प-कौशल कैसे उत्पन्न हुआ ।।२७
मद—अयि सरले ! सुनो, लोक में बहुत से यत्न करके गुरुमुख से शास्त्रादि अध्ययन करते हैं, वह उपदेश भी समय पाकर परिपक्व होता है यह समस्त विद्या की परिपाटी है, परन्तु कन्दर्प शास्त्र कोई किसी से नहीं पढ़ता है, वह स्वतः ही जाग्रत होता है ।।२८।।

अनन्तर शशधर चन्द्रमा पश्चिम दिशा रूप नारी का सेवन करने लगा अर्थात् चन्द्रमा अस्त होने लगा। मानो उसने राधामाधव के सुरतलीला के चिरकाल देखते तथा अभ्यास-शिक्षा करते करते कुछ अधिक क्रिया दिखाने के लिये पश्चिम-दिशा रूप रमणी का आश्रय किया है ।।३६।।
शशि—अहो ! बहुत समय के बाद राधामाधव के सुरतानन्द-शोभा का परिचय-सुख लाभ हुआ। नख दन्त चिन्हों से बिभूषित दोनों मूर्त्ति के दर्शन के लिये हमारा मन उत्कण्ठित हो रहा है ।।३०।।

[अनन्तर शीघ्र ही राधिका का तथा कृष्ण का प्रवेश होना]
राधा—(आगे को देख कर) अहो समस्त दिशाओं का मुख प्रसन्न हो रहा है, इस समय मैं कैसे अनावृत शरीर से गमन करूँगी ? (यह कह कर दो-तीन पाद चल कर ग्रीवा वक्र कर के देखने लगी) ।।३१।।
कृष्ण—(क्षण काल चिन्ता कर मन में) अहो मृगाक्षी का भय एवं मदन दोनों बलबान हो रहा है। ये दो तीन पाद अतिवेग से जाती है फिर दो तीन पाद धीरे से। भय से इनका अंग काँपता है, कभी तो चकित दृष्टि से देखने लगती है। क्या आश्चर्य्य है ? कभी तो वह अदृष्ट रूप में प्रतीत होती है कभी

वा हमारे निकट रहने पर भी हमको दूरस्थ रूप से प्रतीत करती है ॥३२॥

राधा—(शीघ्रता से परिभ्रमण करने लगती हैं) ॥३३॥

मद्—बत्से! देखो देखो, सम्मुख में राधिका तथा कुछ दूर पर माधव भी आ रहे हैं। देखो, राधा को बिषधर सर्पों को देख कर जितना भय नहीं होता है उतना भय दूरस्थ स्थाणु (शाखा पल्लव रहित शुष्कबृक्ष) को देखकर होता है। काक के शब्द से जितना उद्वेग होता हैं उतना सिंह गर्जन से नहीं होता है। प्रकाश से जितनी शंका होती है घोर-अन्धकार में उतना मोह नहीं होता है। हे शशिमुखि! यह प्रतीत होता है कि-ये कान्त के बिरह में भी एसी दुःखित नहीं होती थी आज जैसी कान्त के संयोग में व्यथित हो रही हैं। हे शशिमुखि! देखो आज श्रीराधा की क्या आश्चर्य्य मूर्त्ति हो रही है। जय पराजय के परिचय के द्वारा परस्पर के चित्त अपहरण के लिये परस्पर में बड़ा अभिलाष होता है। जिस में मणिमंजीर का मनोहर शब्द होता है वह मानो कन्दर्प बाणों के शब्द-तुल्य है। जिस में नखतथा दंतक्षतादि दोष समूह गुण रूप माना जाता है। अभिमत गाढ़ मनोरथ के समुचित रतिपति कन्दर्प के युद्ध में वह मनोहर मूर्त्ति निद्राकुलित हो रही है। रामानन्दराय वर्णित यह संगीत जो गजपति प्रतापरुद्र के बिदित है तथा रसिकजनों का सन्तोष प्रदान करता है उस को शुद्ध हृदय में धारण करो ॥३४-३५॥

अहो! राधिका तो अत्यन्त कातर हो रही हैं चलो उनको सुस्थिर करें (निकट जाकर) बत्से राधिके तुम्हारी कुशल तो है? ॥३६॥

राधा—(ससंभ्रम से देख कर) अहो देवि! यहाँ कैसे आई हो? (लज्जा पूर्वक बन्दना करने लगीं) ॥३७॥

[नेपथ्य में कोलाहल]

किस का शब्द है? किस का शब्द है? (एसा कह कर सब नेपथ्य की ओर देखने लगे ॥३८॥

[फिर नेपथ्य में [

शृङ्गाग्र और खुराञ्चल के द्वारा बल पूर्वक पृथ्वी का खनन करता हुआ, प्रलय-कालीन मेघ गर्जन के समान गर्जन के द्वारा समस्त दिशाओं को विदीर्ण करता हुआ उल्कार्चि के समान दोनों नेत्रों को क्रोध से चलायमान करता हुआ समस्त व्रजप्रदेश को बिपत्ति में डालता हुआ अरिष्टासुर आगे आ गया है। (सब निकुञ्ज के भीतर अपने को छिपाकर देखने लगे) ॥३६॥

कृष्ण—(गर्व के साथ उपस्थित हो कर) घोषवासियों का अभय है। (एसा कहते हुये भुजा उठा कर गर्व के साथ) अहो! दर्पित दानवों के बल से क्षीण पर्वतों के साथ पृथ्वी का आलम्बन स्वरूप, शत्रुओं से आकुलित देवताओं का शान्तिकर मख (यज्ञ) के ऊचें यूप सदृश इस कृष्ण भुजा के जाग्रत रहते रहते भय है? उन हम कृष्ण के एकान्त आश्रित व्रजवासियों का भय स्पर्श है? हाय यह बृषासुर हमारे प्राणों के साथ क्रीड़ा करने लगा क्या? (एसा कह कर गर्व के साथ पादन्यास करने लगे) ॥४०-४१॥

[नेपथ्य में]

क्या दुःख क्या दुःख, जिस ने पर्वतों के ऊँचे शिखरों को देख कर असहनीय स्वभाव से अपने दोनों शृङ्गों से उन पर्वतों को विदीर्ण कर दिया है वह अरिष्ट आज भयङ्कर उन शींगों के

सञ्चालन द्वारा कमल तुल्य कोमल अङ्गवाले बालक मुकुन्द के ओर दौड़ रहा है ॥४२॥

[देख कर अश्रु गिरा कर]

मद्--हे पृथिव ! आज बड़ा भार का सहन करो, हे देवगण ! तुम को अब जय की आशा कहाँ है ? हे देवि लक्ष्मि ? आज से तुम व्रत धारण करो, हे व्रजबासीगण ! अब आनन्द की बात क्या है, है माता यशोदे ! न जाने आज तुम को क्या होगा ? हे नन्दादिक ! तुम सब तो आज गये हो जानना, हे राधे ! तुम्हारी क्या दशा होगी ? तुम्हारे लिये सब जगत शून्य हो गया है। हाय आज हम सब नष्ट हो गये ॥ ४३

राधा--(कान देकर भय के साथ) हा धिकार यह मन्द-भागिनी का इस प्रकार दुर्दैव परिपाक उपस्थित हो गया ॥ ४४ ॥

शशि--हे सखि ! स्थिर हो स्थिर हो, यह निश्चय मुकुन्द ही हैं ॥ ४५ ॥

[नेपथ्य में]

जिस दुष्ट के एक वार दोनों नेत्रों के खोलने से तीनों लोक के नेत्र बन्द हो जाते हैं, जिस के एक बार मस्तक उठाने से तीनों लोक नीचे हो जाते हैं, जिस के भ्रमण करने से आकाश में वायु नहीं वहता है, इस समय मधुरिपु श्रीमान् कृष्ण उस दुष्ट अरिष्टासुर के प्राणनाश पूर्वक गेन्द खेलने की भाँति बृन्दाबन प्रदेश से दूर में फेंक कर जगत को उपद्रव रहित करने लगे ॥ ४६ ॥

[अनन्तर श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं]

सब--(स्पृहा के साथ देखते हैं) ॥ ४७ ॥

मद्--अहो ! जय-लक्ष्मी से भूषित वत्स-कृष्ण का कैसा सौन्दर्य्य है। जैसा कि-अलकावली स्वेद बिन्दुओं से भिजी

हुई है, निरन्तर स्वेद विन्दुओं के पड़ने से ललाट का चन्दन गिला हो गया है, मयूर-पुच्छ की चूड़ा खिसल पड़ी है, चरण-निक्षेप से धूलि उड़ कर अंग में लगने से सुन्दर शोभा दे रही है, माधव इस प्रकार आविर्भूत हो कर हमारे दोनों नेत्रों का आनन्द बिस्तार कर रहे हैं ॥४८॥

(नकट में जाकर) बत्स ! भाग्यक्रम से तुम को जयलक्ष्मी-स्वयम्वर से युक्त देख रही हूँ ॥ ४९ ॥

कृष्ण—(देख कर हर्ष सहित) देबि ! आईये कुशल तो है ?॥५०॥

मद—बत्स ! इस समय तुम को जयश्रीयुक्त देखने से ही हमारा मंगल है। अब कुछ समय इस बकुलबृक्ष के नीचे श्राम करो ॥ ५१ ॥

कृष्ण—देबि ! आप की जैसी रुचि हो, (ऐसा कह कर वैठने लगे) ॥५२॥

मद—(स्नेह के साथ श्रीकृष्ण के अंग का समार्ज्जन करते करते) बत्स ! तुम ने बड़ा दुष्कर कर्म्म किया है, तुम को कुछ पारिताषक देने को इच्छा करती हूँ ॥ ५३ ॥

कृष्ण—जैसी आप की इच्छा ॥ ५४ ॥

मद—(शीघ्रता से राधिका को लाकर) बत्स ! यह राधा का तुम को पारितोषिक दिया है। यह नव संगम भय से दुःखित हैं, भय से इन के दोनों लोचन मूदे हुए हैं, अतः सरस अवलोकन से इन को चिरकाल सन्तुष्ट करो ॥ ५५ ॥

कृष्ण—(सतृष्ण नेत्र से देखने लगे)

मद—हे वाले ! क्रूर असुर के साथ संगम के हेतु श्रम होने से तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण के अंग में स्वेद-विन्दु गिर रहे हैं, अतः प्रिय संभाषण से आप्यायन करके अपने वस्त्राञ्चल से वीजन करो ॥ ५७ ॥

राधा—(स्पृहा के साथ वीजन करने लगती हैं) ॥ ५८ ॥
मद—वत्से ! कहो, अब क्या तुम्हारे प्रिय सम्पादन करें ॥ ५९ ॥
कृष्ण—कन्दर्पवाण से हमारा यह शरीर सर्व प्रकार से क्षीण हो गया था, एसे समय पर तुमने आनन्द का एक मात्र हेतु मृगनयना राधा की प्राप्ति कराई। तुम्हारी कृपा से चक्षु को अमृतधारा का लाभ हुआ। अब त्रिभुवन में हम सरी के मनुष्य को और क्या प्रियवस्तु का अवशिष्ट रहा है ? ॥६०॥
देवि ! यदि यह परिपूर्ण शारद-चन्द्रवदना, प्रवल मदना-क्रान्ता राधा हमारे करतल में आकर उपस्थित हुई तब और क्या अभीष्ट रहा है। सौभाग्यवश से हमारे पूर्व सञ्चित समस्त पुण्य फलवान् हुए हैं, इस समय कोकिल-चन्द्रमा-वसन्त-भ्रमर आदि अत्यन्त सुख बिस्तार कर रहे हैं। रामानन्दराय वर्णित यह श्रीकृष्ण-बिहार नराधिप. प्रताप-रुद्र का अमृत-सुख निमित्त होय ॥ ६१ ॥
देवि ! तो भी ऐसा हो, जो पुरुष श्रद्धा युक्त होकर गोपाल-लीला युक्त हमारे इस अद्भुत लीलामृत रहस्य का सेवन करेगा उस मच्चित्त पुरुष के प्रति सर्वदा यही कृपा दृष्टि करना जिस से वह इस बृन्दाबन में अपनी मनोरथ सिद्धि को प्राप्त करें ॥ ६२ ॥
मद—एसा ही होगा ॥६३॥

[अनन्तर सब का प्रस्थान]

यह राधासंगम नामक पंचम अंक समाप्त हुआ।

इति जगन्नाथबल्लभनाटक का अनुबाद
समाप्त हुआ



श्रीगौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, (राधाकुण्ड)

से प्रकाशित पुस्तकें:—

क्र० सं० ग्रन्थ	प्रणयता	ग्रन्थ सं०
१–विरुदावलीलक्षणम्	(श्रीपादरूपगोस्वामीकृतम्)	११०
२–(लघु) श्रीश्रीनारायणभट्टचरितामृतम्		१११
३–स्वकीयात्वनिराशविचार एवं परकीयात्वस्थापन	(श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्तीकृत)	११२, ११३
४–श्रीश्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं वल्लभाचार्य		११४
५–श्रीमाधवदासजी की वाणी तथा आदर्शजीवनी		११५, ११६
६–भक्तितत्वप्रकाशिका	(श्रीचैतन्यदासजीकृता)	११७
गीतिविंशतिका	(श्रीगोस्वामीगोपीलालजीकृता)	११८
भक्तिविवेक	(श्रीश्री नारायणभट्टजी कृत)	११९
"अनर्पितचरीं चिरादिति" श्लोकस्य व्याख्या	(श्रीपादजीवगोस्वामी कृता)	१२०
७–आमोदमहाकाव्यम्	(श्रीअनूपनारायणभट्टाचार्यकृतम्)	१२१
८–श्रीकृष्णकौतुकम्	(श्रीश्रीपरमानन्दपादमहोदयकृतम्)	१२२
९–श्रीगोपालतापनीउपनिषद्भाष्यं	(श्रीपादप्रबोधानन्दसरस्वतीकृतम्)	१२३
१०–श्रीभक्तभूषणसन्दर्भः (सानुवादः)	(श्रीपादनारायणभट्टकृतः)	१२४
११–श्रीराधिकास्तोत्रं (सानुवादं)	(श्रीपादप्रबोधानन्दसरस्वतीकृतम्)	१२५
१२–रासपञ्चाध्यायी (रसिकाल्हादिनी टीका)	(श्रीनारायणभट्टपादविरचिता)	१२६
१३–जगन्नाथवल्लभनाटकम्	(श्रीरामानन्दरायविरचितम्)	१२७

❀ यन्त्रस्थ ग्रन्थ—श्रीगौरहरिप्रेस से ❀

(१) गोविन्दलीलामृतम् (सानुबादम्)

(श्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामिकृतम्)

(२) भाष्यपीठकम्

(श्रीबलदेवविद्याभूषणकृतम्)

(३) अष्टकालीयसेवा (संचित)

(कृष्णदास बाबा के द्वारा)

(४) सर्वसम्वादिनी

(श्री जीवगोस्वामीबिरचिता)

(५) गीता (सारार्थवर्षिणीटीका) [सानुबाद]

(बिश्वनाथचक्रबर्त्तीजीकृता)

